नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 116 • वर्ष 10 अंक 1
फ़रवरी 2008 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

कहाँ से फूटेंगी उम्मीद की किरणें?

परिवर्तन के रास्ते और उसकी समस्याओं-चुनौतियों के बारे में कुछ बातें
मजदूर वर्ग के एक राजनीतिक अखबार की ज़रूरत के बारे में कुछ ज़रूरी बातें

सम्पादक

इस अंक के साथ 'बिगुल' प्रकाशन के दसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। एक बेहद छोटी और अनुभवहीन टीम के साथ हमने इतिहास के इस कठिन अँधेरे दौर में अनचीन्हे रास्ते पर सफ़र शुरू किया था। अनुभव और टीम के अलग-अलग साथियों की क्षमताओं की कमी को हमने अपने साझा संकल्प और 'करते हुए सीखते जाने' के विचार से भरयाई की और हम आगे बढ़ते रहे। इस कठिन और दुर्गम यात्रा पर हमारे हाथ-पाँव तो अब तक कई बार फूले लेकिन बोरिया-बिस्तर समेटने का ख्याल पल भर को भी मन में नहीं आया। ठहराव के मौक़ों पर देश की मेहनतकश जनता की मुक्ति का सपना हमारे दिलों को निराशा के अँधेरों में डूब जाने से बचाता रहा, पूँजी और लोभ-लाभ की दुनिया से नफ़रत हमें ताक़त देती रही और मज़दूर वर्ग के अतीत के महान संघर्षों की अग्निशिखाएँ हमारी राहों को रौशन करती रहीं।

एक दशक लम्बे इस सफ़र के दौरान हमने अगर पीछे मुड़कर देखा भी तो सिंहावलोकन की मुद्रा में - अपनी कमियों-कमज़ोरियों को जानने के लिए, जिससे आगे के सफ़र पर और अधिक मजबूती से क़दम बढ़ाये जा सकें। इस दौरान हम अपनी रफ़तार से सन्तुष्ट कभी नहीं रहे। 'बिगुल' के घोषित उद्देश्यों और ज़िम्मेदारियों का एक बेहद छोटा हिस्सा ही अब तक हम पूरा कर सके हैं। काफ़ी कुछ किया जाना अभी बाक़ी है। जो बाक़ी है उसे पूरा करने के लिए हम कृतसंकल्प हैं क्योंकि हमें भरोसा है कि 'बिगुल' के जागरूक पाठकों की ताक़त हमारे साथ खड़ी है।

'बिगुल' के प्रवेशांक में हमने देश-दुनिया की वस्तुगत परिस्थितियों और देश के क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के हालात की ज़मीन पर खड़े होकर मज़दूर वर्ग के अखिल भारतीय पैमाने के एक ऐसे राजनीतिक अखबार की फौरी ज़रूरत के बारे में लिखा था जो सभी भारतीय भाषाओं में एक साथ निकलता और कम से कम साप्ताहिक निकलता। उस समय अकेले अपने बूते ऐसा अखबार निकालना हमारे लिए सम्भव नहीं था। इसलिए हमने एक मासिक अखबार से शुरुआत की थी। उस समय अखिल भारतीय अखबार एक ही सूरत में निकल सकता था जब देश के अधिकांश या कम से कम कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों, संगठनों की संयुक्त शक्ति इस काम को हाथ में लेती। लेकिन क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों के बीच मौजूद जिन तमाम उसूली और अमली मतभेदों के चलते यह उस समय सम्भव नहीं था वे आज भी न केवल बरक़रार हैं वरन अब तो यह सम्भावना लगभग खत्म हो गयी लगती है। नक्सलबाड़ी किसान उभार के चार दशक बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के ठहराव-बिखराव की जो मौजूदा स्थिति है उसे देखते हुए अब तो ऐसा नामुमकिन लग रहा है।

"आज की पूँजीवादी दुनिया को केवल मार्क्सवादी विज्ञान के मार्गदर्शन में काम करने वाली सर्वहरा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में संगठित जनसंघर्ष ही बदल सकते हैं। तभी एक नयी दुनिया के बन्द दरवाज़े खुलेंगे। और सर्वहारा वर्ग की ऐसी सही-सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण एवं गठन करने के लिए ज़रूरी है मज़दूर वर्ग का एक क्रान्तिकारी

हमने प्रवेशांक में लिखा था कि जितनी जल्दी हो सकेगा हम 'बिगुल' को दैनिक न सही तो कम से कम साप्ताहिक के स्तर तक ले आयेंगे। हम इस लक्ष्य को अब तक हासिल नहीं कर सके हैं। लेकिन आज इसकी ज़रूरत हम पहले से भी काफी ज्यादा शिद्दत के साथ महसूस कर रहे हैं।

एक दशक पहले 'बिगुल' का प्रकाशन जब शुरू हुआ था तब देश में भूमण्डलीकरण की नीतियों के अमल के विनाशकारी नतीज़े उतने खुले रूप में

(पेज 6 पर जारी)

बलिया-नोएडा एक्सप्रेस-वे

विकास के नाम पर एक और विनाशकारी परियोजना

विशंष संवाददाता

लखनऊ। उत्तर प्रदेश को "विकास" की फर्राटा रफ्तार देने के ऐलान के साथ मुख्यमंत्री सुश्री मायावती ने प्रदेश की जनता को अपने जन्मदिन पर एक तोहफा दिया है - बलिया-नोएडा (गंगा) एक्सप्रेस-वे। अगर मायावती जी की घोषणाओं पर विश्वास करें तो इस परियोजना के पूरा होते ही प्रदेश में 'विकास की गंगा' हिलोरें लेने लगेगी। लेकिन प्रदेश की मेहनतकश जनता को सरकारी झाँसे में आने के बजाय पल भर भी देर किये बिना इस परियोजना के खिलाफ मोर्चाबन्दी शुरू कर देनी होगी। क्योंकि यह विकास के नाम पर एक और विनाशकारी परियोजना है। लाखों लोगों को जगह-जमीन से उजाड़ देने वाली और पर्यावरण को तबाह कर देने वाली इस परियोजना से केवल पूँजीपतियों को छप्पर फाड़ दौलत मिलने वाली है। यह पूँजीपतियों की 'माया' है और खुद मायावती ने 'माया' के फेर में पड़कर इस परियोजना का खाका तैयार किया है।

नोएडा से बलिया तक गंगा नदी के बायें किनारे बनने वाली 1047 किमी लम्बी आठ लेन की इस सड़क को बनाने का ठेका मज़दूरों का बर्बर शोषण करने के लिए कुख्यात जे. पी. इण्डस्ट्रीज को दिया जा चुका है। परियोजना के लिए ज़मीनों का अधिग्रहण करने के लिए सर्वेक्षण का काम ज़ोर-शोर से शुरू हो चुका है और इसके साथ ही सम्भावित विरोध को कुचलने के लिए दमन-तंत्र भी पूरी तरह चाक-चौबन्द हो चुका है। इसलिए, परियाजना से प्रभावित होने वाले गरीब-मेहनतकशों-किसानों को ही नहीं पूरे देश के सभी इंसाफपसंद और संवेदनशील लोगों को अपनी आवाज़ें उठाना शुरू कर देना चाहिए। देशी-विदेशी पूँजी और सत्ता के खूनी गँठजोड़ के इस नये हमले के खिलाफ खामोश रहना एक ऐसी भूल होगी जिसे कभी सुधारा नहीं जा सकेगा।

1047 किमी लम्बे इस विनाशक राजमार्ग के लिये, जो आठ लेन का और लगभग 155 मीटर चौड़ा होगा, गंगा के किनारे की लगभग एक लाख हेक्टेयर ज़मीन का अधिग्रहण किया जायेगा। इसमें लगभग 70 प्रतिशत ज़मीन उपजाऊ और तीन फसली है। गंगा किनारे की जलोढ़ मिट्टी के उपजाऊपन के बारे में किसी को बताने की ज़रूरत नहीं है। पुश्त-दर-पुश्त से इन खेतों के सहारे ज्यादातर गरीब छोटे-मँझोले किसान ज़िन्दगी गुज़ारते चले आये हैं। परियोजना उनको उजाड़ देगी। वे दर-ब-बदर कर दिये जायेंगे। बदले में सरकार उजाड़े गये लोगों को पुनर्वास और पुनःस्थापना के नाम पर जो दे रही है वह उनके साथ एक गन्दा मज़ाक है।

रिलायंस इनर्जी, यूनीटेक, जी एम, गैमन आदि बड़ी कम्पनियों को पछाड़ते हुए सबसे कम 293 करोड़ रुपये की

(पेज 2 पर जारी)

विकास के नाम पर एक और विनाशकारी परियोजना

(पेज 1 से आगे)

बोली लगाकर जे पी एसोशियेट्स ने इस परियोजना के विकासकर्ता का ठेका हासिल कर लिया है। एक्सप्रेस-वे के निर्माण में तकरीबन 40 हजार करोड़ रुपये का निवेश होगा। पूँजीपति एक छदाम भी मुफ्त में नहीं लगाता। पाँच सालों में एक्सप्रेस-वे बन जाने के बाद अगले 35 सालों तक जे पी एसेशियेट्स टोल टैक्स वसूलेगा। बोली के बदले में उसे बलिया से नोएडा के बीच चार स्थानो पर 30 हजार हेक्टेयर ज़मीन दी जायेगी जिस पर वह अपने उद्योग और अन्य कारोबार शुरू कर अकूत मुनाफ़ा पीटेगा। उपनिवेशवादियों ने पिछली शताब्दियों में दूसरे देशों में जाकर जमीनों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा जमाने के लिए कत्लेआम और लूटमार मचाया था। आज हमारे देश की सरकारें देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए दलाली करते हुए पुलिस-फौज के दम पर गरीब किसानों से ज़मीनों छीनकर पूँजीपतियों को सौप रही है। विकास के नाम पर तमाम विनाशकारी परियोजनाओं के लिए और सैकड़ों की संख्या में 'सेज' का निर्माण आदि के नाम पर यही किया जा रहा है।

'महाजन हिताय, महाजन सुखाय

सत्ता-सुख भोगने के लिए मायावती 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' नारे को छोडकर 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' का नारा उछाल रही है। लेकिन उनका असली नारा है - 'महाजन हिताय, महाजन सुखाय'। इस नारे को वह बोलती नहीं, बस लागू करती हैं। अगर सचमुच उन्हें प्रदेश के विकास की ही चिन्ता होती तो वाहनों की रफ्तार बढाने के लिए कोई दूसरा विकल्प उन्हें सूझ जाता जिसमे इतनी भारी तबाही-बर्बादी नहीं होती।

इस परियोजना का जो विकल्प था उस पर जानबूझ कर आँखें मूँद ली गयीं। फिलहाल वाराणसी से दिल्ली तक सड़क मार्ग से यातायात का प्रमुख मार्ग राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-दो है। यह राजमार्ग प्रादेशिक राजधानी लखनऊ से राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-56 और राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-24 के रूप में होकर गुजरती है। इसमे दो राय नहीं कि इस राजमार्ग पर वाहनों की भीड़ अत्यधिक बढ़ गयी है और जगह-जगह घण्टों तक लगा रहने वाला जाम सचमुच एक बड़ी समस्या है जिससे निजात पाना जरूरी है। इस समस्या से निपटने की योजना पर पहले से काम चल रहा था। **राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम के पाँचवें चरण के अन्तर्गत वर्ष 2012 तक कुल 23000 किलोमीटर राजमार्गों को चार लेन में विकसित करने का लक्ष्य रखा गया था। इसमें से 5,700 किमी राजमार्ग को छह लेन का बनाया जाना था। 2012 के बाद शुरू होने वाले छठवें चरण में 1000 किमी एक्सप्रेस- वे बनाने की योजना प्रस्तावित थी। हालाँकि इस परियोजना की प्रगति काफी धीमी थी और अब तक केवल 7000 किमी राजमार्ग को ही चार लेन में बदला जा सका है। लेकिन इस परियोजना की प्रगति की समीक्षा कर उसकी रफ्तार तेज करने के बजाय अब इसका बोरिया-बिस्तर बाँध लेने की तैयारी कर ली गयी है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में 15,000 किमी लम्बे एक्सप्रेस-वे का निर्माण प्रस्तावित है जबकि राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम की पहले से चली आ रही योजना की रफ्तार बढ़ाने का कोई ज़िक्र नहीं है। केन्द्र सरकार और राजकीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम से जुड़े कुछ अधिकारियों ने इस आशय का संकेत दिया है कि एक्सप्रेस-वे की कीमत पर इस पुरानी योजना को ठण्डे बस्ते में डाल देने का निर्णय लिया जा सकता है।**

ज़ाहिर है कि सिर्फ मुनाफ़ाखोरों को फायदा पहुँचाने के लिए ही ऐसा किया जा रहा है? अगर पहले से जारी यही योजना आगे बढ़ती, उसकी रफ्तार बढ़ायी जाती तो उन सभी जरूरतों को पूरा किया जा सकता था जिन्हें गंगा एक्सप्रेस-वे के जरिये पूरा किये जाने की बात की जा रही है और सबसे बड़ी बात यह कि इससे भारी पैमाने पर तबाही का वह कहर नहीं बरपा होता जो गंगा एक्सप्रेस-वे से होने वाला है।

सरकार की ढपोरशंखी घोषणाएँ

गंगा एक्सप्रेस-वे के निर्माण से बलिया-दिल्ली की दूरी तय करने में 10 घण्टे और ईधन की बचत के अलावा सरकार तमाम ढपोरशंखी घोषणाएँ कर रही है। एक्सप्रेस-वे के किनारे पड़ने वाले 19 जिलों में दस जगहों पर तथाकथित विकास क्षेत्र खोले जायेंगे। हर विकास क्षेत्र 3-4 हजार हेक्अेयर का होगा जिसमें उद्योगों के अलावा शापिंग माल, फूड कोर्ट, रेस्तराँ, साइबर कैफे, पेट्रोल पम्प आदि के साथ पालीटेक्नीक, आई टी आई और विभिन्न तकनीकी ट्रेनिंग सेण्टर खोले जायेंगे। यह सब निजी पूँजीपति खोलेगे। सरकार की भूमिका केवल मददगार (फेलिसिटेटर) की होगी। सरकार किसानों से जमीनें छीनकर यह मदद करेगी। उसका कहना है कि इन विकास क्षेत्रों में एक लाख लोगों को रोजगार मिलेगा। केवल कुशल श्रमिकों को ही नहीं वरन आउटसोर्सिंग और सूचना-संचार क्षेत्र की देशी-विदेशी कम्पनियों के यहाँ आने से मध्यवर्गीय शिक्षित युवाओं के लिए भी नये अवसर खुलेंगे।

सरकार की ये सारी घोषणाएँ छलावा हैं। परियोजना से जितनी भारी तबाही मचेगी उसकी तुलना में सरकार द्वारा गिनाये जाने वाले फायदे झन्नाटेदार तमाचे मारकर गाल सहलाने जैसा है। असल बात यह है कि सारी परियोजना पूँजीपतियों के मुनाफ़े की कभी खत्म न होने वाली हवस को शान्त करने के लिए है। सरकार वही तर्क दे रही है जो हर पूँजीपति और उसके टुकड़ों पर पलने वाले बुद्धिजीवी देते हैं कि वह उद्योगों को खोलकर लोगों को रोजगार देता है, मज़दूरों का पेट पालता हैं। जबकि बात उल्टी होती है। मज़दूर उद्योगों में अपना हाड़-पसीना गलाकर अपना ही नहीं पूँजीपति का भी पेट पालता है और उसको फाजिल मुनाफ़ा भी कमाकर देता है। परियोजना के ज़रिये मायावती ने विकास के नाम पर लाखों लोगों को बेदखल करने, उनकी आजीविका छीन लेने का परमिट जारी करने के साथ ही पूँजीपतियों को सस्ता श्रम उपलब्ध कराने का रास्ता भी साफ कर दिया है। यह विकास का नहीं विनाश का राजमार्ग है।

पर्यावरण की भारी तबाही

सरकार यह भी दावा कर रही है कि परियोजना से पूर्वी उत्तर प्रदेश को बाढ़ से भी निजात मिलेगी ओर पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुँचेगा। सरकार का यह एक और सफेद झूठ है। इससे पर्यावरण की जितनी भारी तबाही होगी उसके आगे अब तक की तमाम परियोजनाओं से हुई तबाही कुछ नहीं है। गंगा में औद्योगिक कचरे और बिना शुद्ध किये शहरों के सीवेज का पानी बहाने से प्रदूषण ख़तरनाक हदों तक पहुँच चुका है। गंगा शुद्धिकरण के नाम पर अरबों रुपये डकार लिये गये लेकिन हालत में अब तक कोई सुधार नहीं हुआ है। जब एक्सप्रेस-वे के किनारे खुलने वाले लगभग पाँच सौ उद्योगों का कचरा गंगा में बहाया जायेगा तो क्या हाल होगा समझना मुश्किल नहीं।

एक्सप्रेस-वे बनाने के लिए लाखों हरे पेड़ काटे जायेगें। इससे न केवल धरती की गर्मी और बढ़ेगी बल्कि जो मिट्टी कटेगी वह भी बहकर गंगा में ही जायेगी। इससे गंगा का पेटा और अधिक उथला हो जायेगा। एक्सप्रेस-वे बनाने के बायें लिए गंगा के किनारे बाँध की उँचाई बढ़ाकर 7-8मीटर की जायेगी। इससे बाद के दिनों में दायें तट पर पानी का जो फैलाव होगा उसे उस क्षेत्र में आने वाली बाढ़ की विभीषिका के बारे में यह सोचकर ही सिहरन होती है। इसके बावजूद लोगों को गुमराह करने के लिए सरकार घोषणा कर रही है कि पर्यावरण की तबाही नहीं होगी और बाढ़ से भी निजात मिलेगी।

पुनर्वास के नाम पर गरीबों से मज़ाक

शोषितों और दलितों की सरकार होने का दावा करने वाली मायावती सरकार ने उजाड़े जाने वाले लोगों को बसाने और रोजी-रोटी कमाने का फिर से मौका देने के नाम पर जो पुनर्वास और पुनःस्थापना नीति घोषित की है वह गरीबों-दलितों-शोषितों के साथ किया गया गन्दा मज़ाक है। केवल कुछ गज जमीनें (बना-बनाया आशियाना नहीं), मामूली नक़द रकम और हर प्रभावित परिवार के एक व्यक्ति को रोजगार देने की थोथी घोषणाएं हुई हैं। रोजगार की गारण्टी भी नहीं है क्योंकि यह परियोजना के लिए बनाये गये एक्सप्रेस-वे विकास प्राधिकरण में जगहें खाली होने और योग्य होने पर ही मिलेगा। पुनर्वास बस्तियों में भी बिजली, पानी, स्कूल, अस्पताल, पंचायत घर आदि बनाने की जिम्मेदारी विकासकर्ता कम्पनी को सौंपी गयी है। उस पर भी यह कोई बाध्यता नहीं है। अगर ऐसा वह नहीं करेगा तो सरकार क्या उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करेगी? ज़ाहिर है ऐसा हरगिज नहीं होने वाला।

अब तक जिन तमाम परियोजनाओं के विस्थापितों के लिए सरकारी मुआवजों की घोषणाएँ हुई हैं उनका हश्र देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस परियोजना के विस्थापितों का क्या हाल होगा। नर्मदा घाटी सहित अन्य तमाम छोटी-बड़ी परियोजनाओं के विस्थापित आज भी मुआवजों के लिए दर-ब-दर भटक रहे हैं।

झाँसापट्टी में मत आओ जुझारू प्रतिरोध करो

गंगा एक्सप्रेस-वे परियोजना भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी-विदेशी

(पेज 7 पर जारी)

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर (कम्युनिस्टों) और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : बी-108, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 फ़ोन : 011-65976788
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति रु. 3.00 वार्षिक रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाद्यम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए ज़रूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन	5/-	क्यों माओवाद?	10/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-	मई दिवस का इतिहास	5/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की	3/-	अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ	10/-	पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-	पार्टी कार्य के बारे में	15/-
		जनता के बीच पार्टी का काम	30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17/- रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ

साम्प्रदायिक ताक़तों द्वारा सुनियोजित ढंग से 'जनचेतना' को निशाना बनाये जाने के विरुद्ध

सभी प्रगतिशील, जनपक्षधर लेखकों-बुद्धिजीवियों, सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं से एक अपील

कुछ समय पहले ही हमने आपको भेजे पत्र में 'जनचेतना' पर जगह-जगह साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा किए जा रहे हंगामों और धमकियों की सूचना दी थी। हम आपको दुबारा लिख रहे हैं क्योंकि पिछले कुछ समय की घटनाओं ने हमारी इस आशंका को सही साबित किया है। ये हंगामे छिटपुट साम्प्रदायिक तत्वों की कार्रवाइयाँ नहीं हैं बल्कि सुनियोजित ढंग से 'जनचेतना' को निशाना बनाया जा रहा है। यदि इन कायराना हमलों का तत्काल प्रतिवाद नहीं किया गया तो इससे इन ताक़तों के हौसले बढ़ेंगे और वे किसी गम्भीर हमले को अंजाम दे सकते हैं।

हमारा संकल्प है कि इन तमाम धमकियों, हंगामों, झगड़ों और झूठे प्रचार से प्रगतिशील, जनपक्षधर और क्रान्तिकारी साहित्य के प्रचार-प्रसार का हमारा अभियान हरगिज़ नहीं रुकेगा और हम दुगने जोश तथा ताकत से इसे आगे बढ़ायेंगे। लेकिन हमें इस मुहिम में आप सबका नैतिक और भौतिक समर्थन व सहयोग भी चाहिए।

'जनचेतना पर पिछले कुछ माह में हुई ऐसी कुछ घटनाओं की हम आपको जानकारी दे रहे हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, हम लोग साम्प्रदायिक फ़ासिस्टों के विरुद्ध निरन्तर सघन प्रचार अभियान चला रहे हैं। इनकी बर्बर हरकतों और नफरत फैलाने वाले विचारों का पर्दाफ़ाश करने के लिए पर्चों, नुक्कड़ सभाओं, जनसभाओं, घर-घर जनसम्पर्क, नुक्कड़ नाटकों जैसे माध्यमों के अलावा भगतसिंह, राहुल सांकृत्यायन, राधामोहन गोकुलजी, प्रेमचन्द गणेश शंकर विद्यार्थी, ब्रेष्ट आदि सहित विभिन्न प्रगतिशील जनपक्षधर लेखकों-कवियों की रचनाओं का बड़े पैमाने पर वितरण भी इस मुहिम का हिस्सा है।

भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर जनचेतना ने क्रान्तिकारियों से जुड़े साहित्य को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए सालभर की सघन मुहिम चला रखी है जिसके तहत कार्यकर्ताओं द्वारा शहरों के सड़क-चौराहों के किनारे, स्कूल-कॉलेजों, कार्यालयों, कालोनियों, फैक्ट्री गेटों, मजदूर बस्तियों आदि में छोटी-बड़ी प्रदर्शनियाँ लगाने के अलावा, जनचेतना के सचल प्रदर्शनी वाहन के साथ एक टोली पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में छोटे कस्बों व ग्रामीण इलाकों तक में पुस्तक प्रदर्शनियां लगाते हुए घूम रही है। यूँ तो अन्य प्रदर्शनियों में भी साम्प्रदायिक तत्व उलझते ही रहते हैं, लेकिन प्रदर्शनी वाहन पर कार्यकर्ताओं की छोटी टोली होने का लाभ उठाकर वे सबसे अधिक हंगामा वहीं करते रहे हैं।

इस कड़ी में सबसे ताज़ा घटना मथुरा की है। गत 9 जनवरी को मथुरा शहर के बी.एस.ए. डिग्री कालेज के गेट पर जनचेतना की पुस्तक प्रदर्शनी चल रही थी कि अपने आपको संघ परिवार से जुड़ा बताने वाले कुछ युवकों ने आकर वहां प्रदर्शित 'बिगुल' अखबार के दिसंबर अंक में गुजरात चुनाव के सम्बन्ध में प्रकाशित रिपोर्ट पर हंगामा शुरू कर दिया। वे धमकियां दे रहे थे कि "हिन्दुत्व" के खिलाफ प्रचार करने वालों का गुजरात के मुसलमानों और उड़ीसा के ईसाइयों से भी बुरा हाल करेंगे। कालेज के एक शिक्षक तथा छात्रों द्वारा बीच-बचाव की कोशिशों के बावजूद उन्होंने हंगामा और गाली-गलौच जारी रखा तथा 'बिगुल' अखबार की सभी प्रतियों को जला दिया। उन्होंने वहां प्रदर्शित भगतसिंह की 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' और 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो' जैसी पुस्तिकाओं और राधामोहन गोकुलजी, राहुल सांकृत्यायन आदि की पुस्तिकाओं सहित अन्य पुस्तकों को भी फाड़ने की कोशिश की और प्रदर्शनी वाहन में तोड़फोड़ का प्रयास किया और उसे आग लगाने की धमकी दी। स्थानीय नागरिकों के एक प्रतिनिधि मंडल द्वारा मथुरा के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक से मिलने के बाद एस.एस.पी. ने इस मामले में प्राथमिकी दर्ज करके कार्रवाई के आदेश दिए हैं।

इससे पहले भी 'जनचेतना' की सचल पुस्तक प्रदर्शनियों में जगह-जगह बजरंग दल, विहिप और संघ से जुड़े लोग धमकियाँ देते रहे हैं या हंगामा करने की कोशिश करते रहे हैं। पिछले 11 अक्टूबर को मेरठ में बजरंग दल के लोगों ने पहले तो राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित राधामोहन गोकुलजी की पुस्तिकाओं (धर्म का ढकोसला, ईश्वर का बहिष्कार, लौकिक मार्ग, स्त्रियों की स्वाधीनता), राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय' आदि को लेकर गाली-गलौज व धमकियाँ दीं, फिर भगतसिंह की पुस्तिकाओं 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' और 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो' को लेकर उल्टी-सीधी बकने लगे। हमारे साथियों के साथ ही मेरठ विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों द्वारा भी इसका विरोध करने पर वे चले गये, लेकिन उनसे जुड़े एक स्थानीय वकील की झूठी शिकायत पर रात के दस बजे डीएसपी के नेतृत्व में पुलिस प्रदर्शनी बन्द कराने पहुँच गयी। शिकायत में कहा गया था कि हम भगतसिंह को "आतंकवादी" घोषित करने वाली पुस्तकें बेच रहे हैं। शिकायत को बेबुनियाद पाकर पुलिस तो लौट गयी लेकिन स्थानीय थानाध्यक्ष ने हमारे साथियों से कहा कि ये लोग रात में कुछ भी गड़बड़ी कर सकते हैं इसलिए आप अपना प्रदर्शनी वाहन कहीं और ले जाइये। इन्हीं तत्त्वों की साँठ-गाँठ से अगले दिन दैनिक 'हिन्दुस्तान' के मेरठ संस्करण में एक पूरी तरह झूठी खबर प्रकाशित हुई जिसके अनुसार भगतसिंह को आतंकवादी कहने पर युवाओं ने 'जनचेतना' की प्रदर्शनी में खूब हंगामा किया।

इसके बाद पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, हापुड़, मुरादाबाद आदि शहरों में और राजस्थान के जयपुर तथा कई छोटे कस्बों में 'जनचेतना' की प्रदर्शनी के दौरान संघ परिवार से जुड़े लोग आकर बार-बार उलझते और धमकियाँ देते रहते हैं। गत नवंबर में दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र में आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी में कुछ लोगों ने "बजरंग दल वालों" को भेजने और "देख लेने" की धमकी दी थी। इनमें से ज्यादातर का कहना होता है कि हम लोग भगतसिंह के नाम पर झूठी बातें छापकर लोगों को भड़का रहे हैं। उनकी भाष ठीक वही होती है जो 'पांचजन्य' में छपे देवेन्द्र स्वरूप के लेख की थी जिसमें उन्होंने राहुल फाउण्डेशन, प्रो. जगमोहन सिंह और डॉ. चमनलाल का नाम लेकर आरोप लगाया था कि ये लोग भगतसिंह को जबरन कम्युनिस्ट बनाने पर तुले हुए हैं और भगतसिंह के नाम पर फ़र्ज़ी दस्तावेज़ छाप रहे हैं।

इन तमाम घटनाओं में एक चीज साफ दिखाई देती है कि किन पुस्तकों-पुस्तिकाओं पर हंगामा करना है यह सभी जगह तय-सा रहता है। ऐसे तत्व आते ही सीधे उन्हीं पुस्तकों को उठाते हैं या मांगते हैं जैसे उन्हें पहले से पता हो कि किन पुस्तकों को लेकर बखेड़ा खड़ा करना है। हर जगह धमकियों की भाषा भी लगभग एक-सी होती है।

इससे जाहिर है कि सुनियोजित-समन्वित तरीके से जनचेतना को निशाना बनाया जा रहा है। साम्प्रदायिक फासिस्टों की फितरत के मुताबिक पहले वे धमकियों और छोटे-छोटे हंगामों से उकसाने और आजमाने की कोशिश कर रहे हैं। यदि इनका पुरजोर जवाब नहीं दिया गया तो ये कभी भी कोई गम्भीर और घातक हमला कर सकते हैं।

इन शक्तियों की बढ़ती बौखलाहट इस बात का प्रमाण है कि ऐसे साहित्य के प्रचार-प्रसार से इन्हें बेचैनी और खतरा महसूस हो रहा है। ख़ासकर उन क्षेत्रों में जिन्हें ये अपना गढ़ मानते रहे हैं। पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के छोटे शहरों-कस्बों तक में बड़ी संख्या में छात्रों-युवाओं और आम नागरिकों द्वारा जनचेतना की प्रदर्शनियों के स्वागत से उन्हें ख़ासी परेशानी हो रही है।

हमसे जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं को भी इनकी धमकियों और झड़पों का सामना करना पड़ रहा है। पिछले नवम्बर में बजरंग दल के करीब 35-40 कार्यकर्ताओं ने नौजवानों की पत्रिका 'आह्वान' और नौजवान भारत सभा के करावल नगर, दिल्ली स्थित कार्यालय पर आकर धमकी दी कि यदि हमने अपना अभियान बन्द नहीं किया तो हमें इसके गम्भीर नतीजे भुगतने होंगे। उस दौरान नौ.भा.स. और दिशा छात्र संगठन गुजरात में हिन्दू फ़ासिस्टों की घृणित करतूतों के नये खुलासे के बाद इस मुद्दे पर निकाले गये पर्चे के साथ विभिन्न इलाक़ों में सभाएँ और सघन जनसम्पर्क करते हुए व्यापक अभियान चला रहे थे। एक सप्ताह में करावल नगर, मुकुन्द विहार, अंकुर एन्क्लेव, कमल विहार, भजनपुरा, चाँदपुरा, मुस्तफ़ाबाद आदि इलाकों में नौ.भा.स. और दिशा के कार्यकर्ताओं ने 50 से अधिक सभाएँ कीं और हज़ारों पर्चे बाँटे। इलाके में बजरंग दल और संघ परिवार के लोग इससे बुरी तरह बौखलाये हुए हैं। दिशा और नौ.भा.स. ने दिल्ली विश्विद्यालय, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद और पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी यह अभियान जोर-शोर से चलाया था।

पिछले 3-4 वर्षों के दौरान पूरे करावल नगर क्षेत्र में नौ.भा.स. और दिशा के काम से ये तत्त्व पहले ही खुन्दक खाये हुए हैं और पहले भी कई बार इनकी ओर से हमें धमकियाँ मिलती रही हैं। क्रान्तिकारी विचारों एवं साहित्य के प्रचार से और अन्धविश्वास, पोंगापन्थ, ढपोरशंखी बाबाओं आदि के विरुद्ध हमारे पर्चों, नाटकों आदि से भी ये चिढ़े हुए हैं। कार्यालय पर धावा बोलने वाली बजरंग दलियों की भीड़ ने हमारे कार्यकर्ताओं को सीधे-सीधे धमकियाँ दीं कि वे "यहाँ भी गुजरात बना देंगे और तुम लोगों का एहसान जाफरी से भी बुरा हश्र करेंगे।" उन्होंने कार्यालय को जला देने और बम से उड़ा देने की भी धमकी दी थी। इस घटना के बाद नौजवान भारत सभा द्वारा विभिन्न मुद्दों पर चलाए गए अभियानों को स्थानीय लोगों के समर्थन तथा ख़ासकर 19 दिसम्बर को बिस्मिल व अशफाकुल्ला के शहादत दिवस पर निकाले गए क़ौमी एकता मार्च में हिन्दू-मुसलमान नौजवानों की जमकर भागीदारी के बाद से इन तत्वों के हौसले कुछ पस्त हैं।

मित्रों, पिछले कुछ वर्षों के अनुभव ने बार-बार यह साबित किया है कि साम्प्रदायिक ताकतों के हमलों के महज़ प्रतीकात्मक विरोध से या चुप्पी से उनके हौसले और बढ़ते हैं। इनका साहस के साथ एकजुट विरोध करना ज़रूरी है। हम साम्प्रदायिक फ़ासिस्टों की धमकियों को एक चुनौती के रूप में लेते हैं और उनका सामना करने के लिए कटिबद्ध हैं। हम देश के सभी प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों से धार्मिक कट्टरपन्थियों के विरुद्ध जुझारू एकजुटता की अपील करते हैं।

हमारा अनुरोध है कि,

- आप हमारी मुहिम के समर्थन और साम्प्रदायिक फ़ासिस्टों की कारगुज़ारियों के विरोध में बयान जारी करें और हस्ताक्षर अभियान चलायें।

- इस मुद्दे पर स्थानीय स्तर पर सभाएँ-गोष्ठियाँ करके साम्प्रदायिकता-विरोधी एकजुटता को मज़बूत बनायें।

- आप अपने बयान और हमारी मुहिम के समर्थन में हमें पत्र भेजें, जिन्हें हम 'आह्वान' पत्रिका और 'बिगुल' मज़दूर अख़बार में प्रकाशित करेंगे।

- लघु पत्रिका सम्पादक इस अपील को अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित करें।

- साभिवादन,

कात्यायनी (राहुल फाउण्डेशन) (0522-2786782)

सत्यम (सम्पादक - दायित्वबोध) (099104 62009)

अरविन्द सिंह (सम्पादक - दायित्वबोध) (094154 62164)

अभिनव (दिशा छात्र संगठन, सम्पादक - आह्वान)

फोन : 0999937938

आशीष, तपीश (नौजवान भारत सभा)

फ़ोन : 09211662298/9891993332

दूधनाथ (सम्पादक - बिगुल)

सम्पर्क :

- सी-74, ग्राउण्ड फ्लोर, एस.एफ.एस फ्लैट्स, सेक्टर 19, रोहिणी, दिल्ली - 110089,
फोनः 011-27296559/99104 62009,
ईमेल : satyamvarma@gmail.com, disha.du@gmail.com

- जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020 ईमेल : janchetna@rediffmail.com

जनचेतना वाहन पर हुए हमले के विरोध में उठी आवाज़ें

जनचेतना पर हमले की घटना की देश के अलग-अलग हिस्सों में तीखी निन्दा करने और विरोध की अन्य कार्रवाइयों की खबरें 'बिगुल' कार्यालय को लगातार मिल रही हैं। तमाम प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष और जनवादी संगठनों और व्यक्तियों ने विभिन्न तरीकों से अपना विरोध दर्ज कराया है। देश भर के लेखकों-बुद्धिजीवियों, पत्रकारों द्वारा साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के इस साजिशाना हमलों का विरोध करने की खबरें बिगुल कार्यालय को प्राप्त हो रही है। अब तक मिली जानकारी के अनुसार ज्ञानरंजन, मलय, शमशुल इस्लाम, पंकज सिंह, अलीम, सुरेन्द्र कुमार, किशन कलजयी, प्रेमपाल शर्मा, सुरेश नौटियाल, वीरभारत तलवार, विष्णु नागर, नीरद जनवेणु, आशीष गुप्ता, आशुतोष पाठक और मंजुला बोस ने विभिन्न माध्यमों से अपना विरोध दर्ज कराया है और सभी प्रगतिशील एवं धर्मनिरपेक्ष ताकतों की व्यापक एकजुटता का आह्वान किया है।

'जनचेतना' पर हमले के विरोध में गोरखपुर के लेखकों-बुद्धिजीवियों-संस्कृतिकर्मियों ने एक बैठक कर इस घटना के प्रति अपना विरोध जताया।विरोध प्रस्ताव में कहा गया है कि, "भगत सिंह, राधामोहन गोकुलजी, और राहुल सांकृत्यायन की रचनाओं को नुकसान पहुँचाया जाना और मज़दूर अखबार 'बिगुल' की प्रतियों को जलाना हमारी क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील चिन्तन की विरासत पर एक फासीवादी हमला है। यह अभिव्यक्ति की हमारी आज़ादी और जनतंत्र के बुनियादी मूल्यों पर हमला है। हमला करने वाली ये ताकतें वही हैं जो तथाकथित हिन्दुत्व के नाम पर हमारे समाज के जनतांत्रिक ढाँचे और विचार एवं रचना-कर्म की बुनियादी आज़ादी पर देश भर में हमले कर रही हैं।"

विरोध प्रस्ताव में गोरखपुर एवं देश के सभी जनतंत्रप्रेमी नागरिकों का आह्वान करते हुए कहा गया है कि वे "हमारे देश की क्रान्तिकारी विरासत और प्रगतिशील जीवन-मूल्यों एवं संस्कृति पर हमला करने वाली इन साम्प्रदायिक फासीवादी शक्तियों के ख़िलाफ़ अपनी एकजुटता तेज करें जिससे समाज को मध्ययुगीन सामन्ती बर्बरता की ओर ले जाने वाली इन शक्तियों के मंसूबों पर रोक लगायी जा सके।"

विरोध प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वालों में सुप्रसिद्ध इतिहासकार और गोरखपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. हरिशंकर श्रीवास्तव, प्रो. परमानन्द श्रीवास्तव, कथाकार मदन मोहन, आलोचक कपिल देव, कवि वेद प्रकाश, जनवादी लेखक संघ के प्रमोद कुमार, डॉ. अनिल राय, माध्यमिक शिक्षक संघ, उ.प्र. के प्रदेश अध्यक्ष जगदीश पाण्डेय ठकुराई, कार्टूनिस्ट एवं फिल्मकार प्रदीप सुविज्ञ, पीपुल्स फोरम के मनोज कुमार सिंह और पत्रकार अशोक चौधरी सहित अनेक युवा संस्कृतिकर्मी और दिशा छात्र संगठन एवं नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता मौजूद थे।

हमलों से सच छुपाया नहीं जा सकता

प्रिय साथी,

आप लोगों के पत्र से साम्प्रदायिक फ़ासीवादी लम्पटों द्वारा 'जनचेतना' की पुस्तक प्रदर्शनी पर किये गये शर्मनाक हमलों की जानकारी मिली। वास्तव में हमले गहरी चिन्ता का विषय हैं। ये हमले साम्प्रदायिक-फ़ासीवादी शक्तियों की हताशा का ही प्रमाण है। आतंक फैलाने के उद्देश्य से मासूम इंसानों के प्राण लेने की आतंकवादियों की कार्रवाई और विचारों को दबाने के लिए पुस्तक प्रदर्शनी पर आक्रमण में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है। जो तर्क और विवेक का मुकाबला नहीं कर सकते वे हिंसा का सहारा लेते हैं। दुनिया जानती है कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के तर्कों-निष्कर्षों का कोई जवाब जब रूढ़िवादी नहीं दे सके तो उनपर गुम्मे और लाठियाँ बरसाने लगे। राहुल की ख्याति एवम् प्रतिष्ठा नित नया विस्तार पा रही है जबकि उनपर हमला करने वालों का कोई नामलेवा तक नहीं, राहुल लगातार प्रासंगिक होते जा रहे हैं, जबकि उनके विरोधी गुमनामी के अँधेरे में हैं। जिस प्रकार तसलीमा नसरीन द्वारा उठाये गये प्रश्नों को झुठलाने की कोशिश ही हो सकती है, उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। ठीक यही स्थिति 2002 के गुजरात नरसंहार की है। हत्यारी साम्प्रदायिक शक्तियाँ आह और प्रतिरोध दोनों को सहन नहीं कर पा रही हैं। वह चाहती हैं कि अल्पसंख्यकों की हत्याएँ होती रहे और लोग चुप रहे। उनके घर और संस्थान जलाये जाते रहें और लोग ख़ामोशी से तमाशा देखते रहे।

जनचेतना के साथी हमेशा से ही साम्प्रदायिकता के विरोध तथा धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में स्टैण्ड लेते रहे हैं। उन्होंने जनाभियान भी चलाये हैं। सभी चिन्तनशील वैचारिक व्यक्तियों-समूहों के समान पुस्तकें उनके लिए भी मनोरंजन का साधन नहीं, जनचेतना के प्रसार का विश्वसनीय माध्यम है। वैज्ञानिक चेतना से लैस पुस्तकें-पुस्तिकाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ वे छापते ही नहीं उन्हें अवाम के बीच ले भी जाते हैं। यह प्रचार भी है एवम् प्रतिरोध भी! मैं व्यक्तिगत रूप से, अपनी संस्था प्रगतिशील लेखक संघ तथा साझी दुनिया की ओर से भी जनचेतना की पुस्तक प्रदर्शिनियों, उसके साथियों पर हुए हमलों की कड़ी भर्त्सना करता हूँ। हिंसक आक्रमणों से यदि सच को छिपाया या सार्वजनिक होने से रोका जा सकता तो दुनिया में किताबों का छपना कब का बन्द हो चुका होता।

- शकील सिद्दीक़ी
सदस्य - प्रान्तीय सचिव मण्डल
प्रगतिशील लेखक संघ,
उ.प्र., लखनऊ

इस लड़ाई को व्यापक बनाना होगा!

प्रिय साथी सत्यम,

आप द्वारा प्रेषित 'एक अपील' व 'नौजवान भारत सभा' व 'दिशा छात्र संगठन' का परचा व अख़बारों की क्लिपिंग्स मिलीं। अभी दो दिन पूर्व ही भाई कृषक जी से हुई बातचीत में मुझे साम्प्रदायिक तत्त्वों द्वारा आपके संगठनों पर आतंकवादी गिरोहबन्दी और कार्यवाहियाँ करने के बारे में जानकारी मिली थी।

आपके संगठनों ने गत वर्षों में करावलनगर क्षेत्र तथा मेरठ के आसपास के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के विरुद्ध जो मुहिम चलायी है, वह प्रशंसनीय है। किसी भी क्षेत्र में यदि पूँजीवादी-सामन्ती ताव़फतें यदि प्रगतिशील-जनवादी ताव़्ातों पर हमलावर होती हैं, तो यह इस बात का प्रमाण है कि उन्हें चुनौती मिल रही है। आपके संगठनों ने निस्सन्देह अख़बारी-सेमिनारी विचारों की सीमाओं, मध्यवर्गीयता को तोड़ते हुए विचारों को जनता तक ले जाने का काम किया है। जाहिर है कि ये धमकियाँ, धौंस व हमले तो मिलने ही थे।

आपने अपने पत्रकों में नौजवानों के साथ-साथ मित्रों व मित्र संगठनों से अपील की है कि वे इस लड़ाई में साम्प्रदायिक शक्तियों के हमलों के विरुद्ध गोष्ठियाँ, हस्ताक्षर अभियान, सभाएँ आदि करें व लघु पत्रिकाओं में इन समाचारों को प्रकाशित करें। हम गत दो दशक से प्रत्येक रविवार को 'श्रमजीवी विचार मंच' की नियमित गोष्ठियाँ करते हैं व अन्य गतिविधियाँ भी। आगामी रविवार, 9 दिसम्बर, को इस पत्रक व घटनाओं पर हम विचार करेंगे तथा क्रियात्मक रूप से भी कुछ अवश्य करेंगे। इसके अलावा 'विकल्प' व 'अनाम' के साथियों को भी इस मुहिम में शामिल करेंगे।

यहाँ कोटा में साम्प्रदायिक ताक़तों से संघर्ष करने के हमारे अनेकों मांसल अनुभव हैं। ये लोग यहाँ राजनीतिकरूप से काफी ताक़तवर होते हुए भी, हमारे संगठनों द्वारा किये गये प्रतिरोधों व साहसपूर्ण टकराहटों के कारण अब कि जब हमारी ताक़त बँटी व कम हुई है, तब भी हम लोगों से भय खाते हैं। हमारा मानना है कि मात्र प्रचारात्मक व वैचारिक लड़ाई बहुत आगे तक नहीं जा सकती। चूँकि साम्प्रदायिक ताक़तें निरपेक्ष व स्वायत्त नहीं हैं, वे अन्ततः प्रच्छन्न रूप से पूँजीवादी-सामन्ती वर्गों से ही खाद-ख़ुराक पाते और संचालित होती हैं, अतः उनका मुकाबला भी वर्गीय ढंग और मेहनतकश वर्ग की एकजुट शक्तियों के साथ नाभिनाल जुड़कर, उन्हें संगठित करने व संघर्षों की प्रक्रिया में ही सम्भव हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'जब भेड़िया गुर्राये तो मशाल जलाओ...' वह 'विचार' की मशाल उठाने वाले 'हाथ' तो ठोस व मांसल हैं। विचार का मुकाबला विचार से और हमलों का मुकाबला ठोस सक्रिय प्रतिरोध से ही होगा। इसके लिए कड़ी मेहनत और जनता के बीच एकमेव हो जाने, अपनी हस्ती आत्मसात कर देने और क़ुर्बानियों द्वारा ही सम्भव है। हाँ, फिलहाल हमें इस लड़ाई को व्यापक बनाना चाहिए, अधिक से अधिक मित्रों व वर्गीय साथियों/कतारों/संगठनों को शामिल करना चाहिए।

पुनः यही कि, साम्प्रदायिकता, पूँजीवाद-साम्राज्यवाद की ही उपज और उसका टूल है। अतः बिना पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी वर्गीय लड़ाई के अकेले साम्प्रदायिकता से नहीं लड़ा जा सकता है। आपके संगठन की लड़ाई में हम आपके साथ हैं।

यह पत्र समय पर पोस्ट- **महेन्द्र नेह**

इस बीच कोटा में 'जनचेतना' की चल पुस्तक विक्रय गाड़ी आयी थी। ये लोग साथी शिवराम के यहाँ ही ठहरे थे। हम लोगों ने उन्हें सहयोग किया जो हमारा फ़र्ज था। सम्भवतः उन्होंने ज़िक्र किया हो।

16.01.2008

'बिगुल' पर हमला साम्प्रदायिक शक्तियों की कमज़ोरी

मथुरा में 'जनचेतना' वाहन पर हमले की घटना से वाकिफ़ हुआ। साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा 'बिगुल' की प्रतियों का जलाया जाना एक चिन्तनीय घटना तो है लेकिन 'बिगुल' के लिए यह गौरव की बात भी है। निशाना ऐसे तत्वों के मर्म पर लग रहा है। यह अच्छी बात है। आज ऐसे ही साफ़-साफ़ बोलने की ज़रूरत है। यह कार्रवाई उनकी ताक़तों के साम्राज्य की इमारत झूठ की बुनियाद पर ही टिकी होती है इसलिए ये सच्चाई का ताप के सामने आने पर ये मोम के पुतले ही सबित होते हैं।

आज सबसे बड़ी ज़रूरत है कि बहुसंख्यक हिन्दू आबादी का जो हिस्सा इन साम्प्रदायिक फासी वादियों के झूठे प्रचारों के चंगुल में फसा हुआ है उसे बाहर निकाला जाये। इसके लिए 'बिगुल' का प्रचार अभियान जारी रहना चाहिए। इनकी काली करतूतों को बेनकाब करने वाली सामग्री 'बिगुल' में लगातार ही जानी चाहिए।

शिवशरण लखीमपुर खीरी

"प्रगति के लिए समर्थक प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह पुराने विश्वास से सम्बन्धित हर बात की आलोचना करे, उसमें अविश्वास करे और उसे चुनौती दे। प्रचलित विश्वास की एक-एक बात के हर कोने-अँतरे की विवेकपूर्ण जाँच-पड़ताल उसे करनी होगी।"

- भगतसिंह, 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' से

साम्प्रदायिक तत्वों से कन्फ्रंट किया जाना जरूरी

जनचेतना पर साम्प्रदायिक तत्वों के हमलों का मैं कड़ा विरोध करता हूं। मेरा मानना है कि ऐसे नौजवान ज्यादातर वे हैं जो इन शक्तियों के हाथों इस्तेमाल होते हैं और बातों को ठीक से समझते नहीं। इन्हें कन्फ्रंट किया जाना चाहिए और इन्हें बताया जाना चाहिए कि तुम इस्तेमाल हो रहे हो। मैं जनचेतना के साथियों के साथ खड़े होकर इन तत्वों को कन्फ्रंट करना चाहता हूं। जब भी दिल्ली में कहीं प्रदर्शनी लगे तो मैं वहां खड़ा रहूंगा और उनके आने का इंतजार करूंगा।

- भगवान सिंह, दिल्ली

"ज़ुल्मतों के दौर में भी
गीत गाये जायेंगे?
ज़ुल्मतों के दौर के ही-
गीत गाये जायेंगे।"

- बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

"सूरज हमारा है। धरती हमारी होगी।
महासागर की मीनार, तुम गाते रहोगे,
गाते चले जाओगे।"

- पाब्लो नेरूदा
('पॉल रॉब्सन की शान में गीत' से)

चन्द्रशेखर आज़ाद : ग़रीब मेहनतकश जनता की क्रान्ति–चेतना के प्रतीक

"दुश्मनों की गोलियों का
हम सामना करेंगे
आज़ाद ही रहे हैं
आज़ाद ही रहेंगे।"

अपने साथियों के एक जमावड़े के बीच किसी प्रसंग में चन्द्रशेखर आज़ाद ने ये पंक्तियाँ सुनायी थीं। कविता की ये साधारण पंक्तियाँ नहीं थीं। आज़ाद का अपने साथियों से यह वादा था, जिसे उन्होंने 27 फ़रवरी 1931को पूरा कर दिखाया। गोरे दुश्मनो की गोलियों का सामना करते हुए वे शहीद हो गये। जीते-जी अंग्रेज उनको हाथ तक नहीं लगा सके। आज 77 वर्षों बाद भी उनकी गौरवशाली शहादत की याद मेहनतकश जनता की सच्ची आजादी के लिए लड़ने वाले नौजवानों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लकन एसोसियेशन (एच. एस. आर. ए.) के कमाण्डर-इन-चीफ चन्द्रशेखर आज़ाद के सांगठनिक कौशल, व्यावहारिक सूझ-बूझ और अदम्य साहस के बारे में बताने की ज़रूरत नहीं। काकोरी काण्ड के बाद क्रान्तिकारी संगठन के बिखरे हुए सूत्रों को जोड़कर उसके पुनर्गठन का काम उन्हीं के नेतृत्व में हुआ था। उन्होंने अत्यन्त कुशलता, त्याग और साहस के साथ नौजवान क्रान्तिकारियो की टीम को संगठित, प्रेरित और सक्रिय किया। यह तो सभी जानते हैं। लेकन चन्द्रशेखर आज़ाद के व्यक्तित्व के इस पहलू के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं कि वे अत्यन्त कम पढ़े-लिखे होने के बावजूद अत्यन्त विचारवान क्रान्तिकारी थे। किसी भी तर्कपूर्ण और नये विचार के प्रति वे सदा खुले रहते थे और पुराने रूढ़ विश्वासों ओर विचारों को त्यागने में वे पल भर भी देर नहीं करते थे।

आज़ाद के जीवन पर एक नज़र डालने से ही पता चल जायेगा कि एक कटट्र ब्राह्मण परिवार में पैदा होने से लेकर समाजवाद में आस्था रखने वाले एक विचारवान क्रान्तिकारी की यात्रा उन्होंने किस रफ़्तार से तय की। भगतसिंह आदि से उम्र में वे केवल एक-दो साल ही बड़े थे।

आज़ाद का जन्म हद दर्जे की ग़रीबी, अशिक्षा और धार्मिक कटट्रता में हुआ था। वे पुस्तकों को पढ़कर नहीं, राजनीतिक संघर्ष और जीवन

संघर्ष में अपने सकिय अनुभवों से सीखते हुए ही उस क्रान्तिकारी दल के नेता चुने हुए जिसका लक्ष्य था भारत में धर्म निरपेक्ष वर्ग विहीन समाजवादी प्रजातंत्र की स्थापना करना। आजाद भगतसिंह की तरह नास्तिक तो नहीं थे लेकिन वे शचीन्द्र नाथ सान्याल जैसे वेदान्ती या आध्यात्मिक भी नही थे। धर्म को वे निजी विश्वास की चीज मानते थे और सच्चे धर्मनिरपेक्षवादी की तरह उनका यह पक्का विश्वाय था कि राज्य को पूरी तरह धर्म से अलग किया जाना चाहिए।

यह सही है कि भगतसिंह और भगवती चरण वाहरा जैसे मध्य वर्ग के खाते-पीते घरो के शिक्षित और बौद्धिक युवाओं के एच. आर. ए. में भर्ती के बाद क्रान्तिकारी दल का तेजी के साथ वैचारिक विकास हुआ लेकिन ऐसा नहीं था कि कि आजाद उनके विचारों को आँख मूद कर स्वीकारते थे। उन पर पूरी बहस करते थे। आजाद के क्रान्तिकारी साथियों शिव वर्मा, भगवान दास माहौर, सदाशिव मलकापुरकर आदि के संस्मरणों से पता चलता है कि आजाद सभी दस्तावेजों, बयानों, पर्चों आदि पर ध्यानपूर्वक चर्चा करते थे और वे उनकी सहमति से ही जारी किये जाते थे। गम्भीर वैचारिक पुस्तकें साथियों से पढ़वाकर सुनते थे और उन पर चर्चा करते थे। फिरोज शाह कोटला मैदान में सम्पन्न हुई उस ऐतिहासिक बैठक में आज़ाद शामिल नहीं हो पाये थे जिसमें हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसियेशन का नाम बदल कर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन किया गया धा और संगठन का उदेश्य सामाजवाद घोषित किया गया था। लेकिन इस मुद्दे पर साथियों से उन्होंने पूरी चर्चा के बाद सहमति पहले ही दे दी थी।

आजाद के क्रान्तिकारी साथी भगवान दास माहौर ने 'यश की धरोहर में' बिल्कुल ठीक लिखा है कि उनका जीवन और नाम "अशिक्षा, अन्ध विश्वास, धार्मिक कट्टरता में पड़ी भारतीय जनता की क्रान्ति-चेतना का प्रतीक" बन गया है।

आज साम्राराज्यवादी-पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न की बेड़ियों में जकड़ी देश की मेहनतकश जनता के दिलों तक आजाद के अधूरे सपनों को पहुँचाना और उनकी महान शहादत से प्रेरणा लेते हुए उन सपनों को पूरा करने का संकल्प लेना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

"दुनिया में सीधे रास्ते कहीं नहीं हैं, हमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते तय करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए तथा मुफ़्त में कामयाबी हासिल करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।"

- माओ त्से-तुङ

सहयोद्धा की नज़र में चन्द्रशेखर आज़ाद

शिव वर्मा

लिखने-पढ़ने के मामले में आजाद की सीमाएँ थीं। उनके पास कालेज या स्कूल का अंग्रेजी सर्टिफिकेट नहीं था और उनकी शिक्षा हिन्दी तथा मामूली संस्कृत तक ही सीमित थी। लेकिन ज्ञान और बुद्धि का ठेका अंग्रेज़ी जानने वालो को ही मिला हो ऐसी बात तो नहीं है। यह सही है कि उस समय तक समाजवाद आदि पर भारत में बहुत थोडी पुस्तकें थी और वे भी केवल अंग्रेज़ी में ही। आज़ाद स्वयं पढ़कर उन पुस्तको का लाभ नहीं उठा सकते थे लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आज़ाद उस ज्ञान की जानकारी के प्रति उदासीन थे। सच तो यह है कि केन्द्र पर हम लोगों से पढ़ने-लिखने के लिए जितना आग्रह आज़ाद करते थे उतना और कोइ नहीं करता था। वे प्रायः ही किसी न किसी को पकड़कर उससे सिद्धान्त सम्बन्धी अंग्रेजी की पुस्तकें पढ़वाते और हिन्दी में उसका अर्थ करवाकर समझने की कोशिश करते। कार्ल मार्क्स का 'कम्युनिस्ट घोंषणापत्र' दूसरी बारी आदि से अन्त तक मैंने आजाद़ को सुनाते हूए ही पढ़ा था।

भगतसिंह और सुखदेव के आ जाने पर सैद्धान्तिक प्रश्नों पर ख़ासतौर पर बहस छिड़ जाती थी। हमारा अन्तिम उध्श्य क्या है, देश की आज़ादी से हमारा क्या मतलब है, भावी समाज कैसा होगा, श्रेणी रहित समाज का क्या अर्थ है, आधुनिक समाज के वर्ग संघर्ष में क्रान्तिकारियों की क्या भूमिका होनी चाहिये, राजसन्ता क्या है, कांग्रेस किस वर्ग की संस्था है, ईश्वर, धर्म आदि का जन्म कहाँ से हुआ आदि प्रश्नों पर बहस होती और आज़ाद उसमें खुलकर भाग लेते थे।

ईश्वर है या नहीं इस पर आज़ाद किसी निश्चित मत पर पहुँच पाये थे, यह कहना कठिन है। ईश्वर की सत्ता से इनकार करने वाले घोर नास्तिक भगतसिंह की वकालत की दलीलों का विरोध उन्होंने कभी नहीं किया। अपनी ओर से न उन्होंने कभी ईश्वर की वकालत की और न उसके पीछे ही पड़े।

शोषण का अन्त, मानव मात्र की समानता की बात और श्रेणी-रहित समाज की कल्पना आदि समाजवाद की बातों ने उन्हें मुग्ध सा कर लिया था। और समाजवाद की जिन बातों को जिस हद तक वे समझ पाये थे उतने को ही आज़ादी के ध्येय के साथ जीवन के सम्बल के रूप में उन्होंने पर्याप्त मान लिया थ। वैज्ञानिक समाजवाद की बारीकियों को समझे बगैर भी वे अपने-आप को समाजवादी कहने में गौरव अनुभव करने लगे थे। यह बात आज़ाद ही नहीं, उस समय हम सब पर लागू थीं। उस समय तक भगतसिंह और सुखदेव को छोड़कर और किसी ने न तो समाजवाद पर अधिक पढ़ा ही था और न मनन ही किया था। भगतसिंह और सुखदेव का ज्ञान भी हमारी तुलना में ही अधिक था। वैसे समाजवादी सिद्धान्त के हर पहलू को पूरे तौर पर वे भी नहीं समझ पाये थे। यह काम तो हमारे पकड़े जाने के बाद लाहौर जेल में सन् 1929-30 में सम्पन्न हुआ। भगतसिंह की महानता इसमें थी कि वे अपने समय के दूसरे लोगों के मुक़ाबले राजनीतिक और सैद्धान्तिक सूझबूझ में काफ़ी आगे थे।

आज़ाद का समाजवाद की ओर आकर्षित होने का एक और भी कारण था। आज़ाद का जन्म एक बहुत ही निर्धन परिवार में हुआ था और अभाव की चुभन को व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने अनुभव भी किया था। बचपन में भावरा तथा उसके इर्द-गिर्द के आदिवासियों और किसानों के जीवन को भी वे काफ़ी नज़दीक से देख चुके थे। बनारस जाने से पहले कुछ दिन बम्बई में उन्हें मज़दूरों के बीच रहने का अवसर मिला था। इसीलिए, जैसा कि वैशम्पायन ने लिखा है, किसानों तथा मज़दूरों के राज्य की जब वे चर्चा करते तो उसमें उनकी अनुभूति की झलक स्पष्ट दिखायी देती थी।

आजाद ने 1922 में क्रान्तिकारी दल में प्रवेश किया था। उसके बाद से काकोरी के सम्बन्ध में फरार होने तक उन पर दल के नेता पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल का काफ़ी प्रभाव था। बिस्मिल आर्य समाजी थे। और आज़ाद पर भी उस समय आर्य समाज की काफ़ी छाप थी। लेकिन बाद में जब दल ने समाजवाद की रूपरेखा पहचानी तो उन्हें नयी विचारधारा को अपनाने में देरी न लगी।

आजाद हमारे सेनापति ही नहीं थे। वे हमारे परिवार के अग्रज भी थे जिन्हें हर साथी की छोटी से छोटी आवश्यकता का ध्यान रहता था। मोहन (बी. के. दत्त) की दवाई नहीं आयी, हरीश (जयदेव) को कमीज की आवश्यकता है, रघुनाथ (राजगुरु) के पास जूता नहीं रहा, बच्चू (विजय) का स्वाथ्य ठीक नहीं है आदि उनकी रोज की चिन्ताएँ थीं। दिल्ली मे जब यह निश्चित रूप से यह फ़ैसला हो गया कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ही असेम्बली में बम फेकने जायेंगे तो मुझे और जयदेव को छोड़ कर बाक़ी सब साथियों को आदेश दिया गया कि वे दिल्ली से बाहर चले जायें। आज़ाद कों झाँसी जाना था। जब वे चलने लगे तो मैं स्टेशन तक उनके साथ हो लिया। रास्ते में बोले, "प्रभात, अब कुछ ही दिनों में वह दोनों (उनका मतलब भगतसिंह और दत्त से था) देश की सम्पति हो जायेंगे।तब हमारे पास उनकी याद भर रह जायेगी। तब तक के लिए मेहमान समझकर इनकी आराम-तक़लीफ़ का ध्यान रखना।" उस दिन रास्ते भर वे भगतसिंह और दत्त की ही बातें करते रहे।वे भगतसिंह को इस काम के लिए भेजने के पक्ष में नहीं थे। सुखदेव और भगतसिंह की जिद के सामने सिर झुका कर ही उन्होंने वह फ़ैसला स्वीकार किया था, लेकिन अन्दर से भगतसिंह को खोने के विचार से वे दुखी थे।

आज़ाद के बारे में अधिकांश लोगों ने या तो कल्पना के सहारे लिखा है या फिर दूसरों से सुनी -सुनायी बातों को एक जगह बटोरकर रख दिया है। कुछ लोगों ने उन्हें जासूसी उपन्यास का नायक बना उनके चारों ओर तिलिस्म खड़ा करने की कोशिश की है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने अपने को ऊँचा दिखाने के ख्याल से उन्हें निरा जाहिल साबित करने की कोशिश की है। फलस्वरूप उनके बारे में तरह-तरह की ऊलजुलूल धारणाएँ बन गयी हैं - उनमें मानव सुलभ कोमल भावनाओं का एकदम अभाव था, वे केवल अनुशासन का डण्डा चलाना जानते थे, वे क्रोधी एवं हठी थे, किसी को गोली से उड़ा देना उनके बायें हाथ का खेल था, उनके निकट न दूसरों के प्राणों का मूल्य था न अपने प्राणों का कोई मोह था, उनमें राजनीतिक सूझ-बूझ नहीं के बराबर थी, उनका रुझान फासिस्टी था, पढ़ने-लिखने से उनकी पैदाइशी दुश्मनी थी आदि। कहना न होगा कि आज़ाद इनमें से कुछ भी न थे। और जाने अनजाने उनके प्रति इस प्रकार की धारणाओं को प्रोत्साहन दे कर लोंगो ने उनके व्यक्तित्व के प्रति अन्याय ही किया है।

जिन लोगो ने उन्हें फासिस्ट कहा है उन्होंने उनकी चन्द ऊपरी खूबियों को ही देखा है। असली आज़ाद तथा उनके अन्दर हमेशा जगने वाले आदर्श को या तो उन्होंने समझा ही नहीं अथवा समझकर न समझने का प्रयत्न किया है। अहिंसा में अविश्वास, मध्य श्रेणी का आतंक, सेना की प्रधानता आदि फासिज़्म की ऊपरी बातें हैं। आज़ाद को भी अहिंसा में विश्वास न था, मध्य श्रेणी में उन्का जन्म हुआ था। और वह बचपन से ही फ़ौजी तबीयत के थे। लेकिन क्या इतने से ही उन्हें फासिस्ट का ख़िताब दिया जा सकता है? मेरी समझ में ऐसा करना आज़ाद और फासिज़्म दोंनो के प्रति नासमझी का सबूत देना होगा। फासिज़्म का उद्देश्य है क्रान्ति के आगे बढ़ते हुए पहिये को पीछे की ओर खींचना, साम्राज्यवाद की शक्ति को मज़बूत करना तथा जन समुदाय को धोखा देकर पूँजीवाद को मरने से बचाना। आज़ाद अथवा उनकी संस्था के बारे में इनमें से एक बात भी नहीं कही जा सकती। वे तो साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु थे और पूँजीवादी समाज व्यवस्था को समाप्त कर समाजवाद की स्थापना उनके जीवन का उद्देश्य था।

('संस्मृतियां' से)

मज़दूर वर्ग के एक राजनीतिक अखबार की ज़रूरत के बारे में कुछ ज़रूरी बातें

(पेज 1 से आगे)

सामने नहीं आये थे।आज मज़दूर वर्ग ही नहीं सभी मेहनतकश जामातें और यहाँ तक कि मध्य वर्ग का बड़ा हिस्सा भी भूमण्डलीकरण की विनाशक ज़द में आ चुका है। एक तरफ मेहनत की दुनिया की घुटन बढ़ती जा रही है दूसरी ओर मेहनत को हड़पने वाले परजीवियों की दुनिया भोग-विलास और नैतिक अधःपतन के उस रसातल तक पहुँचती जा रही है जहाँ तक रोमन सभ्यता भी नहीं पहुँची थी। क्या हमें इन्तज़ार करते रहना चाहिए कि कोई विसूवियस जैसा ज्वालामुखी फिर से फूटे और पोम्पई शहर की तरह विलासियों के दुनिया को निगल जाये। हरगिज नहीं!

जितना बड़ा सच यह है कि दुनिया बदलती है उतना ही बड़ा सच यह भी है कि यह अपने आप नहीं बदलती। जिस तरह प्रकृति में किसी जड़ पिण्ड को गतिमान करने के लिए बाहरी बल की ज़रूरत होती है उसी तरह जड़ता और गतिरोध में पड़े समाज को गतिमान करने के लिए बाहर से बल लगाना पड़ता है। भूमण्डलीकरण की नीतियों के खिलाफ दुनिया भर में यहाँ-वहाँ हो रहे छिटपुट जन विस्फोटों से, स्वतःस्फूर्त संघर्षों से विश्व पूँजीवाद के आततायी किले नहीं भहरा जायेंगे। यह भी नहीं होगा कि विश्व पूँजीवाद अपने तमाम असाध्य अन्दरूनी अन्तरविरोधों और ढाँचागत संकटों से अपने आप चरमराकर बैठ जायेगा। अतीत की तमाम मज़दूर क्रान्तियों का इतिहास भी यही बताता है कि दुनिया को संगठित नेतृत्व वाली सचेतन क्रान्तियाँ ही बदल सकती हैं। और आज की पूँजीवादी दुनिया को केवल मार्क्सवादी विज्ञान के मार्गदर्शन में काम करने वाली सर्वहरा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में संगठित जनसंघर्ष ही बदल सकते हैं। तभी एक नयी दुनिया के बन्द दरवाज़े खुलेंगे। और सर्वहारा वर्ग की ऐसी सही-सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण एवं गठन करने के लिए ज़रूरी है मज़दूर वर्ग का एक क्रान्तिकारी राजनीतिक अख़बार!

ऐसे अख़बार की जरूरत के बारे में हमारा यह अहसास देश और दुनिया की वस्तुगत परिस्थितियों के साथ ही देश के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की मौजूदा स्थिति के ठोस, वैज्ञानिक आकलन की ज़मीन पर खड़ा है।

कहाँ खड़ी है आज की दुनिया?

भविष्य के प्रति आशावादी होना चाहिए लेकिन उसकी इमारत ठोस ज़मीन पर खड़ा होनी चाहिए। एक क्रान्तिकारी जब भविष्य के अपने मंसूबे बाँधता है तो अपने मन की चाहतों को वह सच्चाइयों पर थोपता नहीं। शुरुआत वह सच्चाइयों को साहसपूर्वक स्वीकार करने से ही करता है। और आज की कड़वी सच्चाई यह है कि शोषण-दमन और प्रतिरोध की ताक़तें पिछले एक दशक में भी प्रतिराध की ताक़तों पर हावी रही हैं। पूँजीवादी शोषण-दमन का तंत्र और अधिक संगठित हुआ है, जबकि प्रतिरोध अभी भी असंगठित है, गतिरोध और निराशा की माहौल है। विश्व ऐतिहासिक स्तर पर सर्वहारा वर्ग और समाजवादी क्रान्तियों की पराजय के बाद, विश्व-शक्ति-सन्तुलन विगत लगभग तीन दशकों से पूँजीवाद के पक्ष में बना हुआ है।

फिर भी अगर वस्तुगत परिस्थितियों की बात की जाये तो साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी सर्वहारा क्रान्तियों की सर्वाधिक उर्वर और संभावनासम्पन्न ज़मीन एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के उन पिछड़े पूँजीवादी देशों में है जहाँ प्राक्पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः टूट चुके हैं और अवशेष-मात्र के रूप में मौजूद हैं, जहाँ पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध का वर्चस्व स्थापित हो चुका है वहाँ की अर्थव्यवस्था विविधीकृत है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों सहित औद्योगिक उत्पादन का भारी विकास हुआ है तथा औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भारी आबादी अस्तित्व में आ चुकी है, जहाँ गाँवों में पूँजी की व्यापक पैठ के साथ ही ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की भी एक भारी संख्या पैदा हो चुकी है, जहाँ पूँजीवादी सामाजिक-सांस्कृतिक तंत्र के विकास के चलते सर्वहारा क्रान्ति के सहयोगी शिक्षित निम्न मध्यवर्ग और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी समुदाय का प्रचुर विकास हुआ है तथा जहाँ कुशल मज़दूरों एवं तकनीशियनों-वैज्ञानिकों के साथ ही विज्ञान-तकनोलॉजी के स्वतंत्र विकास के लिए ज़रूरी मानव-उपादान मौजूद हैं। ऐसे अगली कतार के क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों में ब्राज़ील, अर्जेण्टीना, मेक्सिको, चीले, द. अफ्रीका, नाइज़ीरिया, मिस्त्र, ईरान, तुर्की, इण्डोनेशिया, मलयेशिया, फिलीप्पींस आदि के साथ ही भारत भी शामिल है। (चीन, पूर्व सोवियत संघ के कुछ घटक देशों, और कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों में भी नई क्रान्तियों की परिस्थितियाँ तेज़ी से तैयार हो रही हैं, जहाँ की जनता कभी समाजवादी क्रान्ति के प्रयोगों, परिणामों को देख चुकी है, पर इन देशों की स्थिति कुछ भिन्न है जो अलग से चर्चा का विषय है)।

समस्या यह है कि तीसरी दुनिया के जिन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी क्रान्तियों की ज़मीन तैयार है या हो रही है, वहाँ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियाँ बिखरी हुई हैं। वे देश स्तर की एक पार्टी के रूप में संगठित नहीं हैं और व्यापक जनता के बीच उनका आधार भी देशव्यापी नहीं है। इसका एक वस्तुगत कारण यह ज़रूर है कि सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर के पहले चक्र की समाप्ति और इसके दूसरे, निर्णायक चक्र की शुरुआत के बीच के अन्तराल में, प्रतिक्रिया की सभी शक्तियों ने क्रान्तिकारी शक्तियों को पीछे धकेलने-कुचलने के लिए अपनी सारी शक्ति झोंक दी है। अतीत की क्रान्तियों का शासक वर्गों ने भी समाहार किया है। हर देश की पूँजीवादी राज्यसत्ता अपने सामाजिक अवलम्बों के विकास के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक कुशलता से काम कर रही है और इसमें साम्राज्यवादी देशों और अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियों से भी भरपूर सहायता मिल रही है। साथ ही, आज सिनेमा, टी.वी., और प्रिण्ट मीडिया सहित समस्त संचार माध्यमों का अभूतपूर्व प्रभावी इस्तेमाल पूँजीवादी संस्कृति एवं विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए, व्यापक जन समुदाय की दिमाग़ी गुलामी को लगातार खाद-पानी देने के लिए तथा कम्युनिज़्म, विगत सर्वहारा क्रान्तियों, उनके नेताओं और समाजवादी प्रयोगों के बारे में भाँति-भाँति के सफेद झूठों का प्रचार करके उन्हें कलंकित-लांछित करने के लिए, विश्व-स्तर पर किया जा रहा है। इस ऐतिहासिक अन्तराल की वस्तुगत स्थिति का एक अहम पहलू यह भी है कि इसी दौरान विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्य-प्रणाली में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिन्हें समझे बिना इक्कीसवीं शताब्दी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की रणनीति एवं आम रणकौशल की कोई समझ बनाई ही नहीं जा सकती। इन वैश्विक बदलावों को समझकर विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी आम दिशा निर्धारित करने के लिए आज न तो विश्व सर्वहारा का मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-माओ जैसा कोई मान्य नेतृत्व है, न ही सोवियत संघ और चीन जैसा कोई समाजवादी देश और वहाँ की अनुभवी पार्टियों जैसी कोई पार्टी है और न ही इण्टरनेशनल जैसा दुनिया भर की पार्टियों का कोई अन्तरराष्ट्रीय मंच है। ऐसी स्थिति में विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में, और साथ ही दुनिया के अधिकांश क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों की राज्यसत्ताओं एवं सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में आये बदलावों को जान-समझकर क्रान्ति की मंज़िल और मार्ग को जानने-समझने का काम इन देशों के छोटे-छोटे ग्रुपों-संगठनों में बँटे-बिखरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों को ही करना है। जो कम्युनिस्ट पार्टियाँ संशोधनवादी होकर संसद-मार्ग का राही बन चुकी हैं, वे क्रान्ति मार्ग पर कदापि वापस नहीं लौट सकतीं। वे पतित होकर बुर्जुआ पार्टियाँ बन चुकी हैं, जिनका काम समाजवाद का मुखौटा लगाकर मेहनतकश जनता को धोखा देना है और पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति की भूमिका निभानी है। विपरीततम वस्तुगत स्थितियों से जूझकर अक्तूबर क्रान्तिकारी ताकतें ही कर सकती हैं जो शान्तिपूर्ण संक्रमण के हर सिद्धान्त का और संशोधनवाद के हर रूप का विरोध करती हैं, जो वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त को, बुर्जुआ राज्यसत्ता को बलपूर्वक चकनाचूर करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना के सिद्धान्त को तथा पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए समाजवादी समाज में सर्वहारा वर्ग को सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत नये-पुराने बुर्जुआ तत्वों, बुर्जुआ अधिकारों और बुर्जुआ विचारों के विरुद्ध सतत् वर्ग संघर्ष चलाने के उस सिद्धान्त को स्वीकार करती हैं जो माओ के नेतृत्व में चीन में सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान प्रतिपादित किया गया। लेकिन कम्युनिज़्म के इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को स्वीकारने वाले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन अपनी तमाम ईमानदारी, बहादुरी और कुर्बानी के बावजूद और दुनिया के अधिकांश देशों में अपनी सक्रिय मौजूदगी के बावजूद, फिलहाल विचारधारात्मक रूप से काफ़ी कमज़ोर हैं। माओ के महान अवदानों को वैज्ञानिक भाव के बजाय वे भक्ति भाव से स्वीकार करते हैं। इसी कठमुल्लावाद के चलते वे क्रान्ति के कार्यक्रम के प्रश्न को भी प्रायः विचारधारा का प्रश्न बना देते हैं और माओ के विचारधारात्मक अवदानों को स्वीकारते हुए इस सीमा तक चले जाते हैं कि ऐसा मानने लगते हैं कि चूँकि माओ और चीन की पार्टी ने अपने समय में तीसरी दुनिया के देशों में साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी नवजनवादी क्रान्ति की बात कही थी, इसलिए हमें वैसा ही करना होगा। इससे अलग सोचना ही वे मार्क्सवाद से विचलन मानते हैं। ये कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन जीवन की ठोस सच्चाई को सिद्धान्तों के साँचे में फिट करने की कोशिश करते रहते हैं। यही कठमुल्लावाद है। इसी कठमुल्लावाद के चलते, साम्राज्यवाद की बुनियादी प्रकृति को समझकर आज उसकी कार्यप्रणाली एवं संरचना में आये बदलावों को समझने के बजाय अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन साम्राज्यवाद को हूबहू वैसा ही देखना चाहते हैं जैसा वह लेनिन के समय में था। वे राष्ट्रीय-औपनिवेशिक प्रश्न की समाप्ति के यथार्थ को, परजीवी, अनुत्पादक वित्तीय पूँजी के भारी विस्तार एवं निर्णायक वर्चस्व के यथार्थ को, राष्ट्रपारीय निगमों के बदलते चरित्र एवं कार्यप्रणाली और वित्तीय पूँजी के भूमण्डलीकरण के यथार्थ को, पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति में आये अहम बदलावों के यथार्थ को, भूतपूर्व उपनिवेशों में प्राक् पूँजीवादी सम्बन्धों की जगह पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों की प्रधानता तथा क्रान्ति के रणनीतिक संश्रय (वर्गों के संयुक्त मोर्चे) में परिवर्तन के यथार्थ को समझने की कोशिश करने के बजाय उनकी अनदेखी करते हैं। ऐसे में उनके क्रान्तिकारी सामाजिक प्रयोग मज़दूर वर्ग और सर्वहारा क्रान्ति के अन्य मित्र वर्गों को लामबंद करने के बजाय प्रायः लकीर की फकीरी और रुटीनी कवायद बनकर रह जाते हैं और कभी-कभी तो शासक वर्गों का कोई हिस्सा अपने आपसी संघर्षों में उनका इस्तेमाल भी कर लेता है। इस कठमुल्लावाद के चलते सामाजिक प्रयोगों की विफलता ने एक लम्बे गतिरोध और व्यापक मेहनतकश जनता से अलगाव की स्थिति पैदा की है। इस स्थिति में, दुनिया के सभी अग्रणी क्रान्तिकारी सम्भावना वाले देशों में न केवल देश स्तर की एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का काम लम्बित पड़ा हुआ है, बल्कि, कठमुल्लावाद और गतिरोध की लम्बी अवधि दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवाद के विचारधारात्मक विचलनों को जन्म दे रही है। ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व में नेपाल की विजयोन्मुख जनवादी क्रान्ति का उदाहरण देते हुए दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में हावी कठमुल्लावादी सोच जोर-शोर से यह साबित करने की कोशिश करती है कि अभी भी तीसरी दुनिया के देशों में नवजनवादी क्रान्ति की धारा ही विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मुख्य धारा और मुख्य कड़ी बनी हुई है। हम नेपाल के माओवादी क्रान्तिकारियों को (कुछ अहम विचारधारात्मक मतभेदों, आपत्तियों एवं आशंकाओं के बावजूद) हार्दिक इंकलाबी सलामी देते हैं, लेकिन साथ ही, विनम्रतापूर्वक यह कहना चाहते हैं कि नेपाल की विजयोन्मुख क्रान्ति इक्कीसवीं सदी में होने वाली बीसवीं सदी की क्रान्ति है। यह इतिहास का एक 'बैकलॉग' है। यह इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्ति-निर्धारक व मार्ग-निरूपक क्रान्ति नहीं है। नेपाल दुनिया के उन थोड़े से पिछड़े देशों में से एक है, जहाँ बहुत कम औद्योगिक विकास हुआ है और जहाँ प्राक्-पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मुख्यतः मौजूद हैं। भारत, ब्राज़ील, अर्जेण्टीना, दक्षिण अफ्रीका आदि की ही नहीं बल्कि पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश जैसे देशों की स्थिति भी नेपाल से काफ़ी भिन्न है। आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में प्राक्पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः नष्ट हो चुके हैं। वहाँ पूँजीवादी विकास मुख्य प्रवृत्ति बन चुकी है। इन देशों का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन होने के बाद साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपतियों का कनिष्ठ साझेदार बन चुका है। इन देशों की बुर्जुआ राज्यसत्ताएँ देशी पूँजीपति वर्ग के साथ ही साम्राज्यवादी शोषण का भी उपकरण बनी हुई हैं। इन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी, नयी समाजवादी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है और ऐसा विश्व पूँजीवाद के इतिहास के नये दौर की एक नयी विशिष्टता है। इस नयी ऐतिहासिक परिघटना की अनदेखी आज दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की मुख्य समस्या है। जबतक यह समस्या हल नहीं होगी, तबतक विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी लहर आगे की ओर गतिमान नहीं हो सकती।

हमारा देश : नयी समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में

भारत का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन यदि विचारधारात्मक कमज़ोरी और अधकचरेपन का शिकार नहीं होता तो भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया को गत शताब्दी के सातवें-आठवें दशक में ही समझकर समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम के नतीज़े तक पहुँच सकता था। और अब तो भारतीय समाज का पूँजीवादी चरित्र इतना स्पष्ट हो चुका है कि कठमुल्लेपन से मुक्त कोई नौसिखुआ मार्क्सवादी

(पेज 8 पर जारी)

ट्रेड-यूनियनवादी और सामाजिक-जनवादी राजनीति

"...मज़दूरों में राजनीतिक वर्ग-चेतना बाहर से ही लायी जा सकती है, यानी केवल आर्थिक संघर्ष के **बाहर से**, मज़दूरों और मालिकों के सम्बन्धो के क्षेत्रों के बाहर से। वह जिस एकमात्र क्षेत्र से आ सकती है, वह राज्यसत्ता तथा सरकार के साथ **सभी** वर्गों तथा संस्तरो के सम्बन्धों का क्षेत्र है, वह सभी वर्गो के आपसी सम्बन्धों का क्षेत्र है। इसलिए इस सवाल का जवाब कि मज़दूरों तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने के लिए क्या करना चाहिए, केवल यह नहीं हो सकता कि "मज़दूरों के बीच जाओ" - अधिकतर व्यावहारिक कार्यकर्ता, विशेषकर वे लोग, जिनका झुकाव अर्थवाद की ओर है, यह जवाब देकर ही सन्तोष कर लेते हैं। **मज़दूरों** तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने के लिये सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ताओं को **आबादी के सभी वर्गो के बीच जाना** चाहिए और अपनी सेना की टुकडियों को सभी दिशाओं में भेजना चाहिए।

हमने इस बेडौल सूत्र को जान-बूझकर चुना है, हमने जान-बूझकर अपना मत अति सरल, एकदम दो-टूक ढंग से व्यक्त किया है - इसलिए नहीं कि हम विरोधाभासों का प्रयोग करना चाहते हैं बल्कि इसलिए कि हम अर्थवादियों को वे काम करने की "प्रेरणा देना" चाहते हैं, जिसे समझने से वे इनकार करते हैं। अतएव हम पाठकों से यह प्रार्थना करेंगे कि वे झुँझलाएँ नहीं, बल्कि अन्त तक ध्यान से हमारी बात सुनें।

पिछले चन्द बरसों में जिस तरह का सामाजिक-जनवादी मण्डल सबसे अधिक प्रचलित हो गया हो गया है, उसे ही ले लीजिये और उसके काम की जाँच कीजिये। "मज़दूरों के साथ उसका सम्पर्क" रहता है ओर वह इससे सन्तुष्ट रहता है, वह परचे निकालता है, जिनमें कारख़ानों में होने वाले अनाचारों, पूँजीपतीयों के साथ सरकार के पक्षपात और पुलिस के जुल्म की निन्दा की जाती है। मज़दूरों की सभाओं में जो बहस होती है, वह इन विषयों की सीमा के बाहर कभी नहीं जाती या जाती भी है, तो बहुत कम। ऐसा बहुत कम देखने में आता है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के बारे में, हमारी सरकार की घरेलू तथा विदेश नीति के प्रश्नों के बारे में, रूस तथा यूरोप के आर्थिक विकास की समस्याओं के बारे में और आधुनिक समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति के बारे में भाषणों या वाद-विवादों का संगठन किया जाता हो। और जहाँ तक समाज के अन्य वर्गों के साथ सुनियोजित ढंग से सम्पर्क स्थापित करने और बढ़ाने बी बात है, उसके बारे में तो कोई सपने में भी नहीं सोचता। वास्तविकता यह है कि इन मण्डलों के अधिकतर सदस्यों की कल्पना के अनुसार आदर्श नेता वह है, जो एक समाजवादी राजनीतिक नेता के रूप में नहीं, बल्कि ट्रेड-यूनियन के सचिव के रूप में अधिक काम करता है क्योंकि हर ट्रेड-यूनियन का, मिसाल के लिए, किसी ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन का, सचिव आर्थिक संघर्ष चलापे में हमेशा मज़दूरों की मदद करता है। वह कारख़ानों में होने वाले अनाचरों का भण्डाफोड़ करने में मदद करता है, उन क़ानूनों तथा कदमों के अनौचित्य का परदाफाश करता है, जिनसे हड़ताल करने और घरना देने (हर किसी को यह चेतावनी देने के लिए कि अमुक कारख़ाने में हड़ताल चल रही है) की स्वतंत्रता पर आघात होता है, वह मज़दूरों को समझाता है कि

व्ला. इ. लेनिन

पंच-अदालत का जज, जो स्वयं बुर्जुआ वर्गों से आता है, पक्षपातपूर्ण होता है, आदि-आदि। सारांश यह कि "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" ट्रेड-यूनियन का प्रत्येक सचिव चलाता है और उसकें संचालन मे मदद करता है। पर इस बात को हम जितना ज़ोर देकर कहें थोड़ा है कि बस **इतने ही से** सामाजिक-जनवाद **नहीं हो जाता**, कि सामाजिक-जनवादी का आदर्श ट्रेड-यूनियन का सचिव नहीं, बल्कि एक ऐसा **जन-नायक** होना चाहिए, जिसमें अत्याचार और उत्पीड़न के प्रत्येक उदाहरण से, वह चाहे किसी भी स्थान पर हुआ हो और उसका चाहे किसी भी वर्ग या संस्तर से सम्बन्ध हो, विचलित हो उठने की क्षमता हो; उसमें इन तमाम उदाहरणों का सामान्यीकरण करके पुलिस की हिंसा तथा पूँजीवादी शोषण का एक अविभाज्य चित्र बनाने की क्षमता होनी चाहिए; उसमें प्रत्येक घटना का, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, लाभ उठाकर अपने समाजवादी विश्वासों तथा अपनी जनवादी माँगों को **सभी लोगों को** समझा सकने और **सभी लोगों को** सर्वहारा के मुक्ति-संग्राम का विश्व ऐतिहासिक महत्व समझा सकने की क्षमता होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, (इंग्लैण्ड की सबसे शक्तिशाली ट्रेड-यूनियनों में से एक, बॉयलर-मेकर्स सोसाइटी के विख्यात सचिव एवं नेता) राबर्ट नाइट जैसे नेता की विल्हेल्म लीब्कनेख़्त जैसे नेता से तुलना करके देखिये और इन दोनों पर उन अन्तरों को लागू करने की कोशिश कीजिये, जिनमें मार्तीनोव ने 'ईस्क्रा' ('चिगारी' - रूसी भाषा में मजदूरों का क्रान्तिकारी अख़बार) के साथ अपने मतभेदों को प्रकट किया है। आप पायेंगे - मैं मार्तीनोव के लेख पर नज़र डालना शुरू कर रहा हूँ - कि जहाँ राबर्ट नाइट "जनता का कुछ ठोस कार्रवाइयों के लिए आह्वान" ज़्यादा करते थे, वहाँ विल्हेल्म लीब्कनेख़्त "सारी वर्तमान व्यवस्था का या उसकी आंशिक अभिव्यक्तियों का क्रान्तिकारी स्पष्टीकरण" करने की ओर अधिक ध्यान देते थे; जहाँ राबर्ट नाइट "सर्वहारा की तात्कालिक माँगों को निर्धारित करते थे तथा उनको प्राप्त करने के उपाय बताते थे" वहाँ विल्हेल्म लीब्कनेख़्त यह करने के साथ-साथ "विभिन्न विरोधी संस्तरो की सक्रिय गतिविधियों का संचालन करने" तथा "उनके लिए काम का एक सकारात्मक कार्यक्रम निर्दिष्ट करने"से नहीं हिचकते थे; राबर्ट नाइट ही थे, जिन्होंने "जहाँ तक सम्भव हो, आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देने" की कोशिश की और वह "सरकार के सामने ऐसी ठोस माँगें रखने में, जिनसे कोई ठोस नतीजा निकलने की उम्मीद हो",बड़े शानदार ढंग से कामयाब हुए; लेकिन लीब्कनेख़्त "एकांगी" ढंग का "भण्डाफोड़" करने में अधिक मात्रा में लगे रहते थे; जहाँ राबर्ट नाइट "नीरस दैनिक संघर्ष की प्रगति" को अधिक महत्व देते थे, वहाँ लीब्कनेख़्त "एकांगी" ढंग का "भण्डाफोड़" करने में अधिक मात्रा में लगे रहते थे; जहाँ राबर्ट नाइट "नीरस दैनिक संघर्ष की प्रगति " को अधिक महत्व देते थे, वहाँ लीब्कनेख़्त "आकर्षक एवं पूर्ण विचारों के प्रचार" को ज़्यादा महत्वपूर्ण समझते थे; जहाँ लीब्कनेख़्त ने अपनी देखरेख में निकलने वाले पत्र को "क्रान्तिकारी विरोध पक्ष का एक ऐसा मुखपत्र बना दिया था, जिसने हमारे देश की अवस्था का, विशेषतया राजनीतिक अवस्था का, जहाँ तक वह आबादी के सबसे विविध संस्तरों के हितों से टकराती थी, भण्डाफोड़ किया", वहाँ राबर्ट नाइट "सर्वहारा वर्ग के संघर्ष के साथ घनिष्ठ और सजीव सम्पर्क रखते हुए मज़दूर वर्ग के ध्येय के लिए काम करते थे - यदि "घनिष्ठ और सजीव सम्पर्क" रखने का मतलब स्वयंस्फूर्ति की पूजा करना है,जिस पर हम ऊपर क्रिचेव्स्की तथा मार्तीनोव के उदाहरण का उपयोग करते हुए विचार कर चुके हैं - और"अपने प्रभाव के क्षेत्र को सीमित कर लेते थे", क्योंकि मार्तीनोव की तरह उनका भी यह विश्वास था कि ऐसा करके वह "उस प्रभाव को और गहरा बना देते थे"। संक्षेप में, आप देखेंगे कि मार्तीनोव सामाजिक-जनवाद को ट्रेड-यूनियनवाद के स्तर पर उतार लाते हैं, हालाँकि वह ऐसा स्वभावतः इसलिए नहीं करते कि वह सामाजिक-जनवाद का भला नहीं चाहते, बल्कि केवल इसलिए करते हैं कि प्लेख़ानोव को समझने की तकलीफ़ गवारा करने के बजाय उन्हें प्लेख़ानोव को और गूढ़ बनाने की जल्दी पड़ी हुई है।"...

'क्या करें?' का एक अंश

एन.जी.ओ. संगठन : पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति

इस स्थिति में वर्ग संघर्ष की आँच पर सुधार के छींटे मारने और तरह-तरह के दिग्भ्रम-विभ्रम-भटकाव पैदा करने के लिए विश्व पूँजीवाद के विश्वस्त सिद्धान्तकारों ने अपने चिन्तन-चातुर्य से एन.जी.ओ. राजनीति के रूप में पूँजीवादी व्यवस्था की एक और नयी सुरक्षा पंक्ति तैयार की है। इस राजनीति के प्रमुख कार्यक्षेत्र भारत सहित तीसरी दुनिया के वे सभी अग्रणी देश हैं जहाँ श्रम शक्ति और प्राकृतिक सम्पदा को निचोड़ने की प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, जहाँ देशी-पूँजी के विस्तार के साथ ही साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी भी बड़े पैमाने पर आ रही है, जहाँ तीव्र गति से समाज का पूँजीवादी रूपान्तरण और वर्गीय ध्रुवीकरण हो रहा है तथा जहाँ नई सदी की नई सर्वहारा क्रान्तियों की ज़मीन तेज़ी से पक रही है। भारत के सुदूर कोनों तक विदेशी एजेंसियों और देशी पूँजीपतियों के ट्रस्टों के अनुदानों के सहारे काम करने वाले गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) अनेक रूपों में सक्रिय हैं। ये एन.जी.ओ. तरह-तरह की सुधार की कार्रवाइयाँ करते हैं, जनता की पहलकदमी से स्वास्थ्य-शिक्षा आदि का तंत्र संगठित करने की आड़ लेकर सरकार को उसकी ज़िम्मेदारियों से पीछे हटने का अवसर देते हैं, जनता की विभिन्न माँगों को लेकर इस व्यवस्था के दायरे के भीतर आन्दोलन संगठित करते हुए 'सेफ़्टीवॉल्व' की भूमिका निभाते हैं, जनता के विभिन्न वर्गों के एकजुट संघर्ष की धार व्यवस्था के विरुद्ध केन्द्रित होने से रोकने के लिए अलग-अलग आन्दोलनों का साझा मंच बनाते हैं, संघर्ष के बजाय विमर्श पर, वर्ग के बजाय राष्ट्रीय, जातीय, भाषाई, क्षेत्रीय, अल्पसंख्यक समुदायगत या लैंगिक पहचान की राजनीति (अस्मितावादी राजनीति) पर बल देते हैं तथा इन अस्मिताओं की सामाजिक वर्गीय संरचना में निहित आधारों को दृष्टिओझल या खारिज करने के लिए तरह-तरह के सिद्धान्त रचते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि मुम्बई में 'विश्व सामाजिक मंच' के मेले के बाद 2006 में एन.जी.ओ. के धंधेबाजों ने एक बार फिर दिल्ली में 'भारतीय सामाजिक मंच' का तमाशा किया। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत के पुराने बुर्जुआ सुधारवादियों व सामाजिक जनवादियों - गाँधीवादियों, सर्वोदयियों, जयप्रकाश नारायण के चेले-चाटियों तथा भाकपा-माकपा के संशोधनवादियों के साथ ही रिटायर्ड व पतित क्रान्तिकारी वामपंथियों की एक बड़ी संख्या भी एन.जी.ओ. नेटवर्क में सक्रिय है और प्रायः पर्दे के पीछे के विचार-कक्षों और कमान-कार्यालयों में अहम भूमिका निभा रही है। ये एन.जी.ओ. जनता की भलाई करते हुए जीवनयापन करने का छलावा करते हुए लाखों नेकदिल बेरोज़गार नौजवानों को अपने जाल में फँसाते हैं तथा उन्हें बहुत कम वेतन देकर शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के उपक्रमों में लगाकर पूँजीवादी सरकार का "बोझ" हल्का करते हैं। यही नहीं, सहकारिता की आड़ में विभिन्न उत्पादक उपक्रम संगठित करके ये बहुत कम मज़दूरी पर काम करके अतिलाभ भी निचोड़ते हैं और पूँजीवादी उत्पादन तंत्र के एक पाये का काम करते हैं। ये अपनी कतारों में उन युवाओं को भरती करते हैं जो क्रान्तिकारी कतारों में शामिल होकर समाज का भविष्य बदल सकते हैं। ये ज्यादातर उन्हीं असंगठित मज़दूरों-ग़रीबों के बीच काम करते हैं, जिनके बीच क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को काम करना है। इसतरह, आज एन.जी.ओ. संगठन पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति और सेफ़्टीवॉल्व के रूप में सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। भारत में इनकी सक्रियता का दायरा और पैमाना लगातार विस्तारित हुआ है और यह सिलसिला पिदले एक दशक में काफ़ी तेज़ हुआ है।

गंगा एक्सप्रेस-वे : विनाशकारी परियोजना..

(पेज 2 से आगे)

पूँजी और उनकी दलाल बनी सरकारों की तमाम लुटेरी परियोजनाओं का ही हिस्सा है। निजीकरण-उदारीकरण नीतियों के अमल की ही एक कड़ी है। पूँजीवादी सरकारें हर विनाशकारी परियोजना को विकास के नाम पर ही जनता पर थोपती हैं। यह परियोजना भी इससे अलग नहीं है चाहे मायावती इसे जितनी चमकदार बनाकर पेश कर रही हों यह तबाही का राजमार्ग है। इसलिए सरकारी झाँसापट्टी में आये बिना इसका पुरजोर और एकजुट विरोध होना चाहिए। इसके विरोध में छिटपुट आवाजें उठनी शुरु हुई है; इन सबको एकजुट होकर एक साझा मोर्चा बनाकर सरकार और पूँजीपतियों के खूनी गँठजोड़ के इन नये हमले के खिलाफ जबर्दस्त प्रतिरोध संगठित करना ज़रूरी है। 'बिगुल' टीम प्रतिरोध के इस मोर्चे में अपनी पूरी ताकत से शामिल होगी।

परिवर्तन के रास्ते के बारे में...

(पेज 1 से आगे)

भी इसे देख-समझ सकता है। गाँवों के छोटे और मँझोले किसान आज अपनी ज़मीन के मालिक ख़ुद हैं और सामन्ती लगान और उत्पीड़न नहीं, बल्कि पूँजी की मार उनको लगातार जगह-ज़मीन से उजाड़कर दर-ब-दर कर रही है। किसान आबादी के विभेदीकरण और सर्वहाराकरण की प्रक्रिया एकदम स्पष्ट है। सालाना लाखों छोटे और निम्न मध्यम किसान उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल हो रहे हैं। धनी और उच्च मध्यम किसान बाज़ार के लिए पैदा कर रहे हैं और खेतों में भाड़े के मज़दूर लगाकर अधिशेष निचोड़ रहे हैं। गाँवों में अनेकशः नये रास्तों और तरीकों से वित्तीय पूँजी की पैठ बढ़ी है और देश के सुदूरवर्ती हिस्से भी एक राष्ट्रीय बाज़ार की चौहद्दी के भीतर आ गये हैं। गाँव के धनी और खुशहाल मध्यम किसान आज क्रान्तिकारी भूमि-सुधार के लिए नहीं बल्कि निचोड़े जाने वाले अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर आन्दोलन करते हैं। कृषि-लागत कम करने और कृषि-उत्पादों के लाभकारी मूल्यों की माँग की यही अन्तर्वस्तु है, इसे मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक सामान्य विद्यार्थी भी समझ सकता है। देश के पुराने औद्योगिक केन्द्रों को पीछे छोड़ते हुए आज सुदूरवर्ती कोनों तक लाखों की आबादी वाले नये-नये औद्योगिक केन्द्र विकसित हो गये हैं। यातायात-संचार के साधनों का विगत तीन दशकों के दौरान अभूतपूर्व तीव्र गति से विकास हुआ है। आँखें खोल देने के लिए मात्र यह एक तथ्य ही काफ़ी है कि पूरे देश के संगठित-असंगठित, ग्रामीण व शहरी सर्वहारा की आबादी आज पचास करोड़ के आसपास पहुँच रही है और इसमें यदि अर्द्धसर्वहाराओं की आबादी भी जोड़ दी जाये तो यह संख्या कुल आबादी के आधे को भी पार कर जायेगी। यह किसी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था या अर्द्धसामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों के दायरे में कत्तई सम्भव नहीं हो सकता था। आज का भारत न केवल क्रान्तिपूर्व चीन से सर्वथा भिन्न है, बल्कि वह 1917 के रूस से भी कई गुना अधिक पूँजीवादी है। आज के भारत में केवल पूँजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रान्ति की बात ही सोची जा सकती है। जहाँ तक साम्राज्यवाद का प्रश्न है, भारत जैसे सभी उत्तर-औपनिवेशिक, पिछड़े पूँजीवादी देश साम्राज्यवादी शोषण और लूट के शिकार हैं। हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं, लेकिन साम्राज्यवादी शोषण की प्रकृति आज उपनिवेशों और नवउपनिवेशों के दौर से सर्वथा भिन्न है। भारतीय पूँजीपति वर्ग आज देशी बाज़ार पर अपना निर्णायक वर्चस्व स्थापित करने के लिए राज्यसत्ता पर कब्जा की लड़ाई नहीं लड़ रहा है। राज्यसत्ता पर तो वह 1947 से ही काबिज है। अब उसकी मुख्य लड़ाई देश की मेहनतकश आबादी और आम जनता के विरुद्ध है लेकिन उद्योगों और बाज़ार के विकास के लिए उसे पूँजी और तकनोलॉजी की दरकार है, इसके लिए ज़रूरी है कि वह साम्राज्यवादियों के साथ समझौता करे और उन्हें भी लूटने का मौक़ा दे। साथ ही, उसे अपने उत्पादित माल के लिए तथा तकनोलॉजी, तेल व अन्य ज़रूरतों के लिए विश्व बाज़ार की भी ज़रूरत है। यह ज़रूरत भी उसे विश्व बाज़ार के चौधरियों के आगे झुकने के लिए विवश करती है। अपनी इन्हीं ज़रूरतों और विवशताओं के चलते भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद के सामने झुककर समझौते करता है और उनके साथ मिलकर भारतीय जनता का शोषण करता है। ऐसा करते हुए वह साम्राज्यवादियों से निचोड़े गये कुल अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर मोलतोल भी करता है और दबाव भी बनाता है, लेकिन उसकी यह लड़ाई राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई नहीं बल्कि बड़े लुटेरों से अपना हिस्सा बढ़ाने की छोटे लुटेरे की लड़ाई मात्र है। अपनी इस लड़ाई में भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवादी लुटेरों की आपसी होड़ का भी यथासम्भव लाभ उठाने की कोशिश करता है। आज़ादी के बाद के तीन दशकों तक, जनता से पाई-पाई निचोड़कर, समाजवाद के नाम पर राजकीय पूँजीवाद का ढाँचा खड़ा करके उसने साम्राज्यवादी दबाव का एक हद तक मुक़ाबला किया। लेकिन देशी निजी पूँजी की ताकत बढ़ने के साथ ही, निजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई और फिर एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अलग-अलग पूँजीपतियों ने विदेशी कम्पनियों से पूँजी और तकनोलॉजी लेने के लिए सरकार पर दबाव बनाना शुरू किया। इसके चलते उदारीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। निजीकरण-उदारीकरण के इस नये दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवादी पूँजी का दबाव बहुत अधिक बढ़ा है, लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि उपनिवेशवाद की वापसी हो रही है। ऐसा सोचना भारतीय पूँजीपति वर्ग की स्थिति और शक्ति को नहीं समझ पाने का नतीज़ा है। भारतीय पूँजीपति वर्ग विश्व पैमाने के अधिशेष विनियोजन में साम्राज्यवादी शक्तियों के कनिष्ठ साझीदारों की पंगत में बैठकर इस देश की राज्यसत्ता पर काबिज बना हुआ है और उसकी राज्यसत्ता साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए भी वचनबद्ध है। साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा अब जनता के अन्य वर्गों का रणनीतिक सहयोगी नहीं बन सकता। यानी साम्राज्यवाद-विरोध का प्रश्न आज राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न न रहकर देशी पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष का ही एक अविभाज्य अंग बन गया है। भारत जैसे भूतपूर्व उपनिवेशों में आज एक सर्वथा नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति की - साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस नयी स्थिति को समझे बिना भारतीय जनता की मुक्ति के उपक्रम को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

कहाँ खड़ा है देश का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन?

लेकिन ऐसा करने के बजाय, भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन आज कर क्या रहे हैं? कुछ तो ऐसे छोटे-छोटे संगठन हैं जो कोई भी व्यावहारिक कार्रवाई करने के बजाय साल भर में मुखपत्र के एकाध अंक निकालकर और कुछ संगोष्ठी-सम्मेलन करके बस अपने ज़िन्दा होने का प्रमाण पेश करते रहते हैं। उनकी तो चर्चा ही बेकार है। कुछ ऐसे हैं जो देश की पचास करोड़ सर्वहारा आबादी को छोड़कर मालिक किसानों की लागत मूल्य कम करने और लाभकारी मूल्य तय करने की माँग को लेकर आन्दोलनों में लगे रहते हैं और व्यवहारतः सर्वहारा वर्ग के ही हितों पर कुठाराघात करते हुए, छोटे और मँझोले मालिक किसानों को भी धनी किसानों के आन्दोलनों का पुछल्ला बनाकर नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण प्रस्तुत करते रहते हैं। ये लोग वस्तुतः कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नहीं बल्कि "मार्क्सवादी" नरोदवादी हैं। कृषि और कृषि से जुड़े उद्योगों की भारी ग्रामीण सर्वहारा आबादी को संगठित करने तथा राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के द्वारा गाँव के ग़रीबों व छोटे किसानों को समाजवाद के झण्डे तले संगठित करने की कोशिशें कोई संगठन नहीं कर रहा है। इसके बजाय, यहाँ-वहाँ, सर्वोदयियों की तरह, भूमिहीनों के बीच पट्टा-वितरण जैसी माँग उठाकर कुछ संगठन ग्रामीण सर्वहारा में ज़मीन के निजी मालिकाने की भूख पैदा करके उन्हें समाजवाद के झण्डे के खिलाफ़ खड़ा करने का प्रतिगामी काम ही कर रहे हैं। औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच किसी भी मा.ले. संगठन की कोई प्रभावी पैठ-पकड़ आजतक नहीं बन पायी है। कुछ संगठन औद्योगिक सर्वहारा वर्ग में काम करने के नाम पर केवल मज़दूर वर्ग के कारख़ाना-केन्द्रित आर्थिक संघर्षों तक ही अपने को सीमित रखे हुए हैं और अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद की घिनौनी बानगी पेश कर रहे हैं। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार कार्य, उनके बीच से पार्टी-भरती और राजनीतिक माँगों के इर्द-गिर्द व्यापक मज़दूर आबादी को लामबंद करने का काम उनके एज़ेण्डे पर है ही नहीं। मज़दूर वर्ग के बीच जन-कार्य और पार्टी कार्य विषयक लेनिन की शिक्षाओं के एकदम उलट, ये संगठन मेंशेविकों से भी कई गुना अधिक घटिया सामाजिक जनवादी आचरण कर रहे हैं। भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की ग़लत समझ के कारण, भारत का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन शासक वर्गों की आपसी मोल-तोल में, वस्तुगत तौर पर, बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो रहा है। जब कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन जोर-शोर से कृषि-लागत कम करने और लाभकारी मूल्य की लड़ाई लड़ते हैं तो पूँजीपति वर्ग के साथ मोल-तोल में धनी किसानों के हाथों बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं। जब वे साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए राष्ट्रीय मुक्ति का नारा देते हैं तो साम्राज्यवादियों और भारतीय पूँजीपतियों के आपसी बाँट-बखरे में भारतीय पूँजीपतियों के बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं।

कुछ संगठन किताबी फार्मूले की तरह समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम को स्वीकार करते हैं, लेकिन इनमें से कुछ अपनी गैर बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली के कारण जनदिशा को लागू कर पाने में पूरी तरह से विफल रहे हैं और निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवाद का शिकार होकर आज एक मठ या सम्प्रदाय में तबदील हो चुके हैं। दूसरे कुछ ऐसे हैं जो मज़दूर वर्ग में काम करने के नाम पर केवल अर्थवादी और लोकरंजकतावादी आन्दोलनपंथी कवायद करते रहते हैं। भूमि-प्रश्न पर इनकी समझ के दिवालियेपन का आलम यह है कि कृषि के लागत मूल्य को घटाने की माँग को ये समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम की एक रणनीतिक माँग मानते हैं।

अपने-आप को माओवादी कहने वाले जो "वामपंथी" दुस्साहसवादी देश के सुदूर आदिवासी अंचलों में निहायत पिछड़ी चेतना वाली जनता के बीच "मुक्तक्षेत्र" बनाने का दावा करते हैं और लाल सेना की सशस्त्र कार्रवाई के नाम पर कुछ आतंकवादी कार्रवाईयाँ करते रहते हैं, वे भी देश के अन्य विकसित हिस्सों में पूरी तरह से "मार्क्सवादी" नरोदवादी आचरण करते हुए मालिक किसानों की लागत मूल्य-लाभकारी मूल्य की माँगों पर छिटपुट आन्दोलन करते रहते हैं और यहाँ-वहाँ कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों के बीच काम के नाम पर जुझारू अर्थवाद की विकृत बानगी प्रस्तुत करते रहते हैं।

निचोड़ के तौर पर कहा जा सकता है कि तीन दशकों से भी अधिक समय से, एक ग़लत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों और एक ग़ैर बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली पर अमल ने भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के पहले से ही कमज़ोर विचारधारात्मक आधार को लगातार ज्यादा से ज्यादा कमज़ोर बनाया है और उनके भटकावों को क्रान्तिकारी चरित्र के क्षरण-विघटन के मुकाम तक ला पहुँचाया है। अधिकांश संगठनों के नेतृत्व राजनीतिक अवसरवाद का शिकार हैं। वे सर्वभारतीय पार्टी खड़ी करने के प्रश्न पर संजीदा नहीं हैं और बौद्ध भिक्षुओं की तरह रुटीनी कामों का घण्टा बजाते हुए वक़्त काट रहे हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वे ज़रूर सोचते कि छत्तीस वर्षों से जारी ठहराव और बिखराव के कारण सर्वथा बुनियादी हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो जूते के हिसाब से पैर काटने के बजाय वे भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण का अध्ययन करके कार्यक्रम के प्रश्न पर सही नतीज़े तक पहुँचने की कोशिश ज़रूर करते और कठदलीली या उपेक्षा का रवैया अपनाने के बजाय समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों पर संजीदगी से विचार ज़रूर करते। बहरहाल, केन्द्रीय प्रश्न आज कार्यक्रम के प्रश्न पर मतभेद का रह ही नहीं गया है। अब मूल प्रश्न विचारधारा का हो गया है। ज्यादातर संगठनों ने बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों और कार्यप्रणाली को तिलांजलि दे दी है, उनका आचरण एकदम खुली सामाजिक जनवादी पार्टियों जैसा ही है तथा पेशेवर क्रान्तिकारी या पार्टी सदस्य के उनके पैमाने बेहद ढीले-ढाले हैं। यदि कोई संगठन विचारधारात्मक कमज़ोरी के कारण लम्बे समय तक सर्वहारा वर्ग के बीच काम ही नहीं करेगा, या फिर लम्बे समय तक अर्थवादी ढंग से काम करेगा तो कालान्तर में विच्युति भटकाव का और फिर भटकाव विचारधारा से प्रस्थान का रूप ले ही लेगा और वह संगठन लाजिमी तौर पर संशोधनवाद के गड्ढे में जा गिरेगा। यदि कोई संगठन कार्यक्रम की अपनी ग़लत समझ के कारण लम्बे समय तक मालिक किसानों की माँगों के लिए लड़ता हुआ परोक्षतः सर्वहारा वर्ग के हितों के विरुद्ध खड़ा होता रहेगा तो कालान्तर में वह एक ऐसा नरोदवादी बन ही जायेगा, जिसके ऊपर बस मार्क्सवादी का लेबल भर चिपका हुआ होगा। यानी, विचारधारात्मक कमज़ोरी के चलते भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की सही समझ तक नहीं पहुँच सके और अब, लम्बे समय तक ग़लत कार्यक्रम के आधार पर राजनीतिक व्यवहार ने उन्हें विचारधारा का ही परित्याग करने के मुकाम तक ला पहुँचाया है। किसी भी यथार्थवादी व्यक्ति को अब इस खोखली आशा का परित्याग कर देना चाहिए कि मा.ले. शिविर के घटक संगठनों के बीच राजनीतिक वाद-विवाद और अनुभवों के आदान-प्रदान के आधार पर एकता क़ायम हो जायेगी और सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी अस्तित्व में आ जायेगी। जो छत्तीस वर्षों में नहीं हो सका, वह अब नहीं हो सकता। यदि होना ही होता तो यह गत शताब्दी के सातवें या आठवें दशक तक ही हो गया होता। अब कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की इन संरचनाओं को यदि किसी चमत्कार से एक साथ मिला भी दिया जाये तो देश स्तर की एक बोल्शेविक पार्टी की संरचना नहीं बल्कि एक ढीली-ढाली मेंशेविक पार्टी जैसी संरचना ही तैयार होगी। और सबसे प्रमुख बात तो यह है कि इन संगठनों के अवसरवादी नेतृत्व से अब यह उम्मीद पालना ही व्यर्थ है। जहाँ तक जुनूनी आतंकवादी धारा की बात है तो उनकी दुस्साहसवादी रणनीति दुर्गम जंगल-पहाड़ों और बेहद पिछड़े क्षेत्रों के बाहर लागू ही नहीं हो पायेगी और अन्य क्षेत्रों में वे कुलकों की माँग उठाते हुए नरोदवादी अमल करते रहेंगे, मज़दूरों के बीच अर्थवाद करते रहेंगे और शहरों में बुद्धिजीवियों का तुष्टीकरण करते हुए उनका दुमछल्ला बनकर सामाजिक जनवादी आचरण करते रहेंगे। इस सतमेल खिचड़ी की हाँड़ी बहुत देर आँच पर चढ़ी नहीं रह सकती। कालान्तर में, इस धारा का विघटन अवश्यम्भावी है। इससे छिटकी कुछ धाराएँ भा.क.पा. (मा.ले.) (लिबरेशन) की ही तरह सीधे

(पेज 10 पर जारी)

कविता

जनता की रोटी

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

जन्म : 10 फरवरी 1898
निधन : 14 अगस्त 1956

इंसाफ जनता की रोटी है
वह कभी काफी है, कभी नाकाफी
कभी स्वादिष्ट है तो कभी बेस्वाद
जब रोटी दुर्लभ है तब चारों ओर भूख है
जब बेस्वाद है, तब असंतोष।

खराब इंसाफ को फेंक डालो
बगैर प्यार के जो भूना गया हो
और बिना ज्ञान के गूंदा गया हो!
भूरा, पपड़ाया, महकहीन इंसाफ
जो देर से मिले, बासी इंसाफ है!

यदि रोटी सुस्वादु और भरपेट है
तो बाकी भोजन के बारे मे माफ किया जा सकता है
कोई आदमी एक साथ तमाम चीजें नहीं छक सकता।

इंसाफ की रोटी से पोषित
ऐसा काम हासिल किया जा सकता है
जिससे पर्याप्त मिलता है।

जिस तरह रोटी की जरूरत रोज है
इंसाफ की जरूरत भी रोज़ है
बल्कि दिन में कई-कई बार भी
उसकी जरूरत है।

सुबह से रात तक, काम पर, मौज लेते हुए
काम, जो कि एक तरह का उल्लास है
दुख के दिन और सुख के दिनों में भी
लोगों को चाहिए
रोज-ब-रोज भरपूर, पौष्टिक, इंसाफ की रोटी।

इंसाफ की रोटी जब इतनी महत्वपूर्ण है
तब दोस्तो कौन उसे पकायेगा?
दूसरी रोटी कौन पकाता है?
दूसरी रोटी की तरह
इंसाफ की रोटी भी
जनता के हाथों ही पकनी चाहिए
भरपेट, पौष्टिक,रोज-ब-रोज।

नारी सभा

बेटियाँ ही दूर करेंगी बापों की बेबसी!

पिछले दिनों मेरठ शहर के एक दैनिक अख़बार में एक फ़ोन आया। रिसीव करने वाले पत्रकार को उसने बताया कि उसकी तीन बेटियाँ हैं। एक बेटी को छेड़खानी करने वालों से तंग आकर मैंने घर में बिठा दिया। दूसरी की शादी दूसरे शहर जाकर करनी पड़ी। तीसरी की पढ़ाई बीच में छुड़ानी पड़ी। क्या बेटी का बाप होना इस शहर में गुनाह हो गया है ... इतना कहकर वह शख़्स फूट-फूट कर रोने लगा।

बेटियों के ऐसे बेबस बापों की संख्या इस देश में न जाने कितनी है? मार्क्स ने एक जगह लिखा है कि किसी समाज के सांस्कृतिक विकास को नापने का सबसे बड़ा पैमाना यह है कि उसमें स्त्रियों की क्या स्थिति है? इस पैमाने पर अगर हम अपने समाज को कसें तो हमें इसी त्रासद सच्चाई से रूबरू होना पड़ेगा कि अभी यह सांस्कृतिक विकास की सबसे निचली पायदानों पर ही खड़ा है।

जहाँ औरत होना ही गुनाह है और उसकी तरह-तरह की सज़ाएँ हैं, ऐसा समाज हमारा अकेला नहीं। विकसित से विकसित आधुनिक पूँजीवादी देशों में भी औरत होना गुनाह है। बेशक उसको दी जाने वाली सज़ाओं के रूप अलग-अलग हो सकते हैं। अरब जगत की शेखशाहियों से लेकर पूँजीवादी जनवादी राज्यों तक, स्त्री अभी भी मानवीय गरिमा और अपनी इंसानी पहचान के लिए जूझ रहीं है। 'औरत होने की सज़ाएँ' कहीं ज़्यादा बर्बर हैं तो कहीं थोड़ा सभ्य, फर्क, बस इतना ही है।

अमेरिका और यूरोप के विकसित पूँजीवादी समाजों में अगर स्त्री मध्ययुगीन बर्बरता से निकल कर पूरी तरह बाज़ार की 'सुसभ्य और सुपाच्य' गुलामी में जकड़ी है तो अभी भी दुनिया के कई कोने ऐसे हैं जहाँ उनके लिए सूरज की रोशनी और खुली हवाएँ वर्जित हैं। भारत जैसे समाजों में स्त्रियाँ आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता की 'शिष्ट और सलोनी' बाजार की गुलामी के साथ ही मध्ययुगीन बर्बरताओं की जकड़न में एक साथ जकड़ी है।

नये साल के मौके पर मुम्बई और कोच्चि में छेड़खानी की जो घटनाएँ घटीं वे बन्द चारदीवारियों के अन्दर दी जाने वाली या 'नाक की खातिर' दी जाने वाली सज़ाएँ नहीं थीं। क़म से क़म उनके घर-परिवार वालों ने उन्हें इतनी आज़ादी बख़्शी थी कि वे पाँच सितारा होटलों में नये साल की पार्टियों में अपने पुरुष मित्रो के साथ जा सकें और पर्यटन स्थलों पर अकेले भ्रमण कर सकें। शायद परिवार द्वारा दी गयी इस आज़ादी पर वे फख्र भी करती हों। लेकिन स्त्रियों के लिए तो पूरी दुनिया ही एक खुली जेल है, एक यातनाघर है। जहाँ वे किसी भी समय, कहीं भी पुरुष वर्चस्व वादी, शासक मानसिकता के हमलों का शिकार हो सकती हैं और उन्हें तरह-तरह से यातनाएँ दी जा सकती हैं।

मुम्बई और कोच्चि की घटनाएँ दुनिया की नज़रों के सामने इसलिए आ गयीं कि उस समय वहाँ इलेक्ट्रानिक मीडिया के लोग नये साल के जश्न को कैमरों में क़ैद करने के लिए मौजूद थे। देशभर में रोज़ न जाने ऐसी कितनी घटनाएं घटती हैं, हर बेबस बाप किसी अख़बार के दफ़्तर में जाकर अपनी व्यथा नहीं सुनाता। इन अनसुनी आवाजों और अनसुनी फरियादों से हमारी फिजां बोझिल है।

राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1971 से 2006 तक बलात्कार के मामले सौ फीसदी बढ़े हैं। हर दो घण्टे में बलात्कार। सबसे आगे मध्य प्रदेश है। राजधानी दिल्ली भी सुरक्षित नहीं। महिलाओं के साथ हो रहे अपराध में इसकी भागीदारी 18.9 प्रतिशत है। इनमें से बलात्कार के 31.2, अपहरण के 34.7 और 18.7 फीसदी मामले दहेज हत्या के थे। पूरे देश का यही हाल है।

पूँजीवाद ने औरत को पुराने सामन्ती समाज की बेड़ियों से, घर से बाहर तो निकाला लेकिन आज वह शोषण-उत्पीड़न के नये-नये बारीक रूपों के सामने खड़ी है। पुराने रूप भी बरक़रार हैं। आज भी औरतों को सती किया जाता है और राजनीतिक दलों के नेता तक उसका महिमामण्डन करते है। खुद दिमाग़ी गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी स्त्रियाँ सती मइया के दर्शन के लिए उमड़ पड़ती हैं। खानदान की नाक कटने से बचाने के लिए प्रेम करने की गुनहगार बेटियों को ही काट दिया जाता है। जब जीवितों का यह हाल है तो फिर अजन्में कन्या भ्रूणों की चीत्कार कौन सुने? सवाल है कि किया क्या जाये?

शासन-प्रशासन का सुरक्षा घेरा मजबूत कर, केवल क़ानूनी जकड़बन्दी सख़्त कर क्या ऐसे हमलों से बचा सकता है। पुरुष हो या महिला, क्या खाक़ी वर्दी ख़ुद ही पुरुष स्वामित्ववादी मानसिकता में पगी हुई नहीं है। क्या पुलिस उच्चाधिकारियों के ऐसे बयान हमें पढ़ने-सुनने को नहीं मिलते जिसमें वे लड़कियों की वेश-भूषा-पहनावे और 'आज़ादी' को छेड़खानी के लिए आमंत्रित करने वाला नहीं बताते। मुम्बई की घटना पर एक चैनल में चर्चा के दौरान एक पुलिस अधिकारी से जब यह पूछा गया कि आपकी बेटी के साथ अगर ऐसा होता तो आप क्या करते तो उसने जवाब दिया कि मैं अपने बेटी को ऐसी जगह पर जाने ही नहीं देता। जब पुलिस के उच्चधिकारियों की यह मानसिकता है तो आम खाकी वर्दी वालों की सोच पर कुछ न कहना ही बेहतर होगा। औरतों की संगठित आवाज़ों के दबाव में महिलाओं को सुरक्षा देने वाले जो थोड़े-बहुत क़ानून बने भी हैं उन्हें आखिरकार लागू करना तो ख़ाकी वर्दी को ही है।

मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में संगठित आवाजों के दबाव से अधिक से अधिक क़ानूनी सुरक्षाएँ हासिल करना तो स्त्री-मुक्ति संघर्ष का एक बेहद छोटा दायरा है। अगर स्त्री को मुकम्मिल आजादी हासिल करना है तो उसे सबसे पहले समझना होगा कि यह आज़ादी उसे भीख में नहीं मिलेगी। उसे ख़ुद ही क़दम आगे बढ़ाना और संगठित होना होगा।

स्त्रियों को यह समझना होगा कि आज की पूँजीवादी दुनिया में पुराने समाज की तुलना में उसे जो आज़ादी हासिल हुई है वह बाज़ार और मुनाफ़े की शर्तों पर है। पूँजीवाद ने स्त्रियों को घर की चादीवारी से इसलिए बाहर निकाला है क्योंकि उसे सस्ता श्रम चाहिए। स्त्री की देह भी उसके लिए एक माल है जिसे वह बाज़ार में तरह-तरह से परोसकर मुनाफ़ा पैदा करता है। वह स्त्रियों की छद्म आज़ादी का एक मायाजाल भी रचता है। सिनेमा और माडलिंग जगत में आज स्त्रियों को तरह-तरह के नये अवसर उपलब्ध होते दिख रहे हैं। छोटे शहरों और क़स्बों तक में 'रियलिटी शो' की धूम मची है।

मध्यवर्ग की स्त्रियों को मुक्ति के इस 'मायाजाल' से, दिमाग़ी गुलामी की जकड़नों से ख़ुद मुक्त होना होगा। बाजार और मुनाफ़े का जो तंत्र कारखानों में पुरुष मेहनतकशों का खून चूसता है वही स्त्री की छद्म आजादी का जाल भी रचता है। इसलिए, अपनी आजादी की राह पर आगे बढ़ने के लिए आज यह शर्त बन गयी है कि उस ढाँचे के बारे में सोच बनायी जाये जो बनाता है गुलाम लेकिन आजादी के नाम पर।

कहने का मतलब यह कि बापों की बेबसी दूर करने के लिए बेटियों को ही आगे आना होगा।

- मीनाक्षी

परिवर्तन का रास्ता...

(पेज 8 से आगे)

संशोधनवाद का रास्ता पकड़ सकती हैं और मुमकिन है कि कोई एक या कुछ धड़े "वामपंथी" दुस्साहसवाद के परचम को उठाये हुए इस या उस सुदूर कोने में अपना अस्तित्व बनाये रखें या फिर शहरी आतंकवाद का रास्ता पकड़ लें। भारत में पूँजीवादी विकास जिस बर्बरता के साथ मध्यवर्ग के निचले हिस्सों को भी पीस और निचोड़ रहा है, उसके चलते, ख़ासकर निम्न मध्यवर्ग से, विद्रोही युवाओं का एक हिस्सा आत्मघाती उतावलेपन के साथ, व्यापक मेहनतकश जनता को जागृत व लामबंद किये बिना, स्वयं अपने साहस और आतंक एवं षड्यंत्र की रणनीति के सहारे आनन-फानन में क्रान्ति कर देने के लिए मैदान में उतरता रहेगा। निम्न पूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति लातिन अमेरिका से लेकर यूरोप तक के सापेक्षतः पिछड़े पूँजीवादी देशों में एक आम प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। विश्व सर्वहारा आन्दोलन के उद्भव से लेकर युवावस्था तक, यूरोप में (और रूस में भी) कम्युनिस्ट धारा की पूर्ववर्ती एवं सहवर्ती धारा के रूप में निम्न-पूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति मौजूद थी और मज़दूरों के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से पर इनका भी प्रभाव मौजूद था। आश्चर्य नहीं कि आने वाले दिनों में भारत में भी क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के साथ-साथ मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद की एक या विविध धाराएँ मौजूद रहें और (कोलम्बिया या अन्य कई लातिन अमेरिकी देशों के सशस्त्र ग्रुपों की तरह) उनमें से कई अपने को मार्क्सवादी या माओवादी भी कहते रहें। लेकिन समय बीतने के साथ ही मार्क्सवाद के साथ उनका दूर का रिश्ता भी बना नहीं रह पायेगा।

जहाँ तक कतारों की बात है, यह सही है कि आज भी क्रान्तिकारी कतारें मुख्यतः मा.ले. संगठनों के तहत ही संगठित हैं। पर गैर बोल्शेविक ढाँचों वाले मा.ले. संगठनों में उन्हें मार्क्सवादी विज्ञान से शिक्षित नहीं किया गया है और स्वतंत्र पहलकदमी के साहस व निर्णय लेने की क्षमता का भी उनमें अभाव है। विभिन्न संगठनों में समय काटते हुए उनकी कार्यशैली भी सामाजिक जनवादी प्रदूषण का शिकार हो रही है और निराशा का दीमक उनके भीतर भी पैठा हुआ है। उनके राजनीतिक-सांगठनिक जीवन के व्यवहार ने उन्हें स्वतंत्र एवं निर्णय लेने की क्षमता से लैस वह साहसिक चेतना और समझ नहीं दी है कि वे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की सच्ची माओवादी स्पिरिट में 'विद्रोह न्यायसंगत है' के नारे पर अमल करते हुए अवसरवादी नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दें और अपनी पहल पर कोई नयी शुरुआत कर सकें। लेकिन जो कतारें सैद्धान्तिक मतभेदों और विवादों की जटिलताओं को नहीं समझ पाती हैं, उनके सामने यदि कोई सही लाइन व्यवहार में, निरूतरता और सुसंगति के साथ, लागू होती और आगे बढ़ती दिखाई देती है तो फिर निर्णय तक पहुँचने में वे ज़रा भी देर नहीं करतीं। आगे भी ऐसा ही होगा।

इतिहास और वर्तमान के इसी विश्लेषण-आकलन के आधार पर हमारा यह मानना है कि भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन का जो चरण नक्सलबाड़ी से शुरू हुआ था, वह कमोबेश गत शताब्दी के नवें दशक तक ही समाप्त हो चुका था। हमें आज के समय को उस दौर की निरंतरता के रूप में नहीं, बल्कि उसके उत्तरवर्ती दौर के रूप में देखना होगा, यानी निरंतरता और परिवर्तन के ऐतिहासिक द्वंद्व में आज हमारा ज़ोर परिवर्तन के पहलू पर होना चाहिए। निस्संदेह नक्सलबाड़ी और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की विरासत को हम स्वीकार करते हैं और उसके साथ एक आलोचनात्मक सम्बन्ध निरंतर बनाये रखते हैं, लेकिन हमारे लिए वह अतीत की विरासत है, हमारा वर्तमान नहीं है। आज भावी भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता इस अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये राजनीतिक संरचनाएँ अपनी बोल्शेविक स्पिरिट और चरित्र, मुख्य रूप से, ज्यादातर मामलों में, खो चुकी हैं। यानी एक एकीकृत पार्टी बनाने की प्रक्रिया का प्रधान पहलू आज बदल चुका है। आज कार्यक्रम व नीति विषयक मतभेदों को हल करके विभिन्न क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों के ढाँचों को एक एकीकृत पार्टी के ढाँचे में विलीन कर देने का सवाल ही नहीं रह गया है, बल्कि प्रधान प्रश्न क्रान्तिकारी बोल्शेविक उसूलों एवं चरित्र वाले संगठन का ढाँचा नये सिरे से बनाने का प्रश्न बन गया है। यानी क्लासिकीय लेनिनवादी शब्दावली में कहें तो, प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं बल्कि पार्टी-निर्माण का है। जिसे अबतक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह, मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। अब इस शिविर के नेतृत्व से 'पॉलिमिक्स' के जरिए पार्टी-पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। बेशक़ जनमानस को प्रभावित करने वाले किसी भी विचार की आलोचना और उसके साथ बहस का काम तो होता ही रहता है और इससे क्रान्तिकारी कतारों की वैचारिक-राजनीतिक शिक्षा भी होती रहती है, लेकिन ऐसी राजनीतिक बहसों का लक्ष्य आज किसी संगठन के साथ एकता बनाना नहीं हो सकता। हम आज ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते।

नये सिरे से पार्टी निर्माण में अखबार की भूमिका

यह सही है कि यूनियनें मज़दूर वर्ग के लिए वर्ग संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला होती हैं, लेकिन ट्रेड यूनियन कार्रवाइयों से अपने आप पार्टी कार्य संगठित नहीं हो जाता। मज़दूरों को ट्रेड यूनियनों में संगठित करने और उनके रोज़मर्रे के संघर्षों को संगठित करने के प्रयासों के साथ-साथ हमें उनके बीच राजनीतिक प्रचार का काम - समाजवाद के प्रचार का काम, मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन के प्रचार का काम शुरू कर देना होगा। मज़दूर आंदोलन में वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा केवल ऐसे सचेतन प्रयासों से ही डाली और स्थापित की जा सकती है। इस काम में मज़दूर वर्ग के एक राजनीतिक अखबार की भूमिका सबसे अहम होगी। ऐसा अखबार राजनीतिक प्रचारक-संगठनकर्ता- आंदोलनकर्ता के हाथों में पहुँचकर स्वयं एक प्रचारक-संगठनकर्ता-आंदोलनकर्ता बन जायेगा तथा मज़दूरों के बीच से पार्टी-भरती और मज़दूरों की क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा का प्रमुख साधन बन जायेगा। ऐसे अखबार के मज़दूर रिपोर्टरों-एजेण्टों-वितरकों का एक पूरा नेटवर्क खड़ा किया जा सकता है, उसके लिए मज़दूरों से नियमित सहयोग जुटाने वाली टोलियाँ बनाई जा सकती हैं और अख़बार के नियमित जागरूक पाठकों को तथा मज़दूर रिपोर्टरों-एजेण्टों को लेकर जगह-जगह मज़दूरों के मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डल संगठित किये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में मज़दूरों के बीच से पार्टी-भरती और राजनीतिक शिक्षा के काम को आगे बढ़ाकर हमें पार्टी-निर्माण के काम को आगे बढ़ाना होगा।

इस तरह मज़दूरों के बीच से पार्टी-संगठनकर्ताओं और कार्यकर्ताओं की भरती और तैयारी के बाद ही ट्रेड-यूनियन कार्य को आगे की मंज़िल में ले जाया जा सकता है तथा उसे अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद से मुक्त रखते हुए क्रान्तिकारी लाइन पर क़ायम रखने की एक बुनियादी गारण्टी हासिल की जा सकती है। साथ ही, ऐसा करके ही, किसी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी के कम्पोज़ीशन में मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आये पेशेवर क्रान्तिकारी व ऐक्टिविस्ट साथियों के मुकाबले मज़दूर पृष्ठभूमि के साथियों का अनुपात क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जा सकता है, पार्टी के क्रान्तिकारी सर्वहारा हिरावल चरित्र को ज़्यादा से ज़्यादा मजबूत बनाया जा सकता है, पार्टी के भीतर विजातीय तत्वों और लाइनों के खिलाफ़ नीचे से निगरानी का माहौल तैयार किया जा सकता है और इनकी ज़मीन कमज़ोर की जा सकती है।

इसके साथ ही कम्युनिस्ट संगठनकर्ताओं को व्यापक मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ जनदुर्ग के स्तम्भों के रूप में खड़ी करनी होंगी और व्यापक सार्वजनिक मंच संगठित करने होंगे। ये संस्थाएं और ये मंच न केवल वर्ग के हिरावल दस्ते को वर्ग के साथ मजबूती से जोड़ने का काम करेंगे, बल्कि इनके नेतृत्व और संचालन के जरिए आम मेहनतकश राजकाज और समाज के ढाँचे को चलाने का प्रशिक्षण भी लेंगे तथा अभ्यास भी करेंगे। इसे जनता की वैकल्पिक सत्ता के भ्रूण के रूप में देखा जा सकता है, जिन्हें शुरुआती दौर से ही हमें सचेतन रूप से विकसित करना होगा। भविष्य में इनके अमली रूप किस रूप में सामने आयेंगे, यह हम आज नहीं बता सकते, लेकिन क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य पंचायत के रूप में हम वैकल्पिक लोक सत्ता के सचेतन विकास की इसी अवधारणा को प्रस्तुत करना चाहते हैं। अक्तूबर क्रान्ति के पूर्व सोवियतों का विकास स्वयंस्फूर्त ढंग से (सबसे पहले 1905-07 की क्रान्ति के दौरान) हुआ था, जिसे बोल्शेविकों ने सर्वहारा सत्ता का केन्द्रीय ऑर्गन बना दिया। अब इक्कीसवीं शताब्दी में, भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों को नयी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करते हुए मेहनतकश वर्गों की वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता को सचेतन रूप से विकसित करना होगा और ऐसा शुरुआती दौर से ही करना होगा। यह एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन यहाँ इतना बता देना ज़रूरी है कि आज की दुनिया में मजबूत सामाजिक अवलंबों वाली किसी बुर्जुआ राज्यसत्ता को आम बग़ावत के द्वारा चकनाचूर करने के लिए "वर्गों के बीच लम्बा अवस्थितिगत युद्ध" अवश्यम्भावी होगा और इस "युद्ध" में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के ऐसे जनदुर्गों की अपरिहार्यतः महत्वपूर्ण भूमिका होगी। साथ ही, जनता की वैकल्पिक सत्ता के निर्माण की प्रक्रिया को सचेतन रूप से आगे बढ़ाकर ही, क्रान्ति के बाद सर्वहारा जनवाद के आधार को व्यापक बनाया जा सकता है और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए सचेष्ट बुर्जुआ तत्वों के विरुद्ध सतत् संघर्ष अधिक प्रभावी, निर्मम निर्णायक और समझौताहीन ढंग से चलाया जा सकता है। स्पष्ट है कि नयी समाजवादी क्रान्ति की सोच से जुड़ी वैकल्पिक सत्ता के सचेतन निर्माण की अवधारणा के पीछे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं की अहम भूमिका है।

भारतीय सर्वहारा वर्ग का हिरावल दस्ता शहरों और गाँवों की सर्वहारा आबादी को संगठित करने के साथ ही तीन वर्गों का रणनीतिक संयुक्त मोर्चा (गाँवों शहरों की सर्वहारा आबादी, छोटे मालिक किसानों सहित गाँवों-शहरों की अर्द्धसर्वहारा आबादी तथा उनके ढुलमुल दोस्त के रूप में मध्यम किसान एवं गाँवों-शहरों का मध्यवर्ग) क़ायम करके ही नयी समाजवादी क्रान्ति को - साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति को सफल बना सकता है। पूँजीवादी भूस्वामी-फार्मर-कुलक और सभी छोटे-बड़े पूँजीपति आज क्रान्ति के दुश्मनों की श्रेणी में आते हैं। केवल नयी समाजवादी क्रान्ति का रास्ता ही आज भारतीय जनता की मुक्ति का रास्ता हो सकता है। इसके कार्यक्रम को अमल में लाने वाली सर्वहारा वर्ग की पार्टी के निर्माण की दिशा में आगे कदम बढ़ाकर ही आज के गतिरोध को तोड़ा जा सकता है। दूसरा कोई भी रास्ता नहीं है।

शुरुआत कहाँ से करें?

सर्वहारा के हिरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज, अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, बस शुरुआत करने भर की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में सभी मोर्चों पर सभी कामों को एक साथ हाथ में कत्तई नहीं लिया जा सकता। आज का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शुरुआत कहाँ से करें और हमारे कामों की प्राथमिकता क्या हो?

पार्टी-निर्माण के काम को आज का प्रमुख काम मानते हुए, सबसे पहले यह ज़रूरी है कि हम चन्द एक चुने हुए औद्योगिक केन्द्रों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच अपनी मुख्य एवं सर्वाधिक ताक़त केन्द्रित करें। वहाँ मज़दूरों के जीवन के साथ एकरूप होकर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं को ठोस परिस्थितियों के हर पहलू की जाँच पड़ताल एवं अध्ययन करना होगा, मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ बनाकर रचनात्मक कार्य करने होंगे, ताकत एवं अनुकूल अवसर के हिसाब से मज़दूरों के रोज़मर्रे के आर्थिक एवं राजनीतिक संघर्षों में भागीदारी करते हुए उनके बीच व्यवहार के धरातल पर क्रान्तिकारी वाम राजनीति का प्राधिकार स्थापित करना होगा और इसके साथ-साथ राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार की कार्रवाइयाँ विशेष ज़ोर देकर संगठित करना होगा। यह ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग के बीच से पार्टी-भरती और उस नयी भरती की राजनीतिक शिक्षा एवं सांगठनिक-राजनीतिक कार्यों में उसके मार्गदर्शन के लिए मज़दूर वर्ग का एक ऐसा राजनीतिक अख़बार नियमित रूप से प्रकाशित किया जाये तो मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन और समाजवाद का सीधे प्रचार करते हुए मज़दूरों के शिक्षक, प्रचारक और संगठनकर्ता की भूमिका निभाये। ऐसा अख़बार पार्टी-निर्माण के प्रमुख उपकरण की भूमिका निभायेगा।

लेकिन पार्टी-निर्माण के काम की इस प्रारम्भिक अवस्था में भी, बुनियादी विचारधारात्मक कार्यभारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती या उन्हें टाला नहीं जा सकता। विपर्यय और पूँजीवादी पुनरुत्थान के वर्तमान अन्धकारमय दौर में पूरी दुनिया की बुर्जुआ मीडिया और बुर्जुआ राजनीतिक साहित्य ने समाजवाद के बारे में तरह-तरह के कुत्सा प्रचार करके विगत सर्वहारा क्रान्तियों की तमाम विस्मयकारी उपलब्धियों को झूठ के अम्बार तले ढँक दिया है। आज की युवा पीढ़ी सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान और विगत सर्वहारा क्रान्तियों की वास्तविकताओं से सर्वथा अपरिचित है। उसे यह बताने की ज़रूरत है कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त क्या कहते हैं और इन सिद्धान्तों को अमल में लाते हुए बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों ने क्या उपलब्धियाँ हासिल कीं। उन्हें यह बताना होगा कि सर्वहारा क्रान्तियों के प्रथम संस्करणों की पराजय कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी और फिर उनके नये संस्करणों का सृजन और विश्व पूँजीवाद की पराजय भी अवश्यम्भावी है। उन्हें यह बताना होगा कि विगत क्रान्तियों ने पराजय के बावजूद, पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का उपाय भी बताया है और इस सन्दर्भ में चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं का युगान्तरकारी महत्व है। आज के सर्वहारा वर्ग की नयी पीढ़ी को इतिहास की इन्हीं शिक्षाओं से परिचित कराने के कार्यभार को हम नये सर्वहारा पुनर्जागरण का नाम देते हैं। लेकिन इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियाँ हू ब हू बीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के नक़्शेक़दम पर नहीं चलेंगी। ये अपनी महान पूर्वज क्रान्तियों से ज़रूरी बुनियादी शिक्षाएँ लेंगी और फिर इस विरासत के साथ,

(पेज 12 पर जारी)

कहानी

हड़ताल

मक्सिम गोर्की

नेपल्ज के ट्राम-कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी थी। रिव्येरा क्याया सड़क की पूरी लम्बाई में ट्राम के खाली डिब्बे खड़े थे और विजय-चौक में ड्राइवरों तथा कण्डक्टरों की भीड़ जमा थी - बड़े ही खुशमिजाज, हो-हल्ला करनेवाले और पारे की तरह चंचल नेपल्जवासियों की भीड़। इन लोगों के सिरों और बाग के जंगले के ऊपर तलवार की तरह पतली फव्वारे की धार हवा में चमक रही थी। जिन लोगों को इस बड़े नगर के सभी भागों में काम-काज से जाना था, उनकी भारी भीड़ शत्रुता की भावना अनुभव करते हुए इन हड़तालियों को घेरे थी। ऐसे सभी कारिन्दे, कारीगर, छोटे-मोटे व्यापारी और दर्जी, आदि हड़तालियों को ऊँचे-ऊँचे और खीझते हुए भला-बुरा कह रहे थे। गुस्से से भरे शब्द, चुभते व्यंग्य-वाक्य हवा में गूँज रहे थे हाथ लगातार लहरा रहे थे जिनकी मदद से नेपल्जवासी कभी न रुकनेवाली अपनी जबान की तरह ही बहुत अभिव्यक्तिपूर्ण तथा अच्छे ढंग से अपने को व्यक्त करते हैं।

सागर की ओर से मन्द-मन्द समीर बह रहा था। नगर-उपवन के बहुत बड़े-बड़े ताड़ वृक्ष गहरे हरे रंग की अपनी शाखाओं के पंखों को धीरे-धीरे हिला रहे थे। इन ताड़ वृक्षों के तने भीमकाय हाथियों के भद्दे पैरों से बहुत मिलते-जुलते थे। बच्चे-नेपल्ज की सड़कों-गलियों के अधनंगे बच्चे - गौरेयों की तरह फुदक रहे थे, हवा को अपनी किलकारियों और ठहाकों से गुँजा रहे थे।

नक्काशी की प्राचीन कलाकृति से मिलता-जुलता शहर रश्मि-स्नात था और पूरे का पूरा मानो आर्गन बाजे के संगीत में डूबा था। खाड़ी की नीली लहरें तट-बन्ध से टकराती थीं, खंजड़ी जैसी छनक पैदा करती हुई लोगों के शोर और चीख-चिल्लाहट का साथ देती थीं।

भीड़ की गुस्से भरी आवाजों का लगभग जबाब दिये बिना हड़ताली एक-दूसरे के साथ सटते जाते थे, बाग के जंगले पर चढ़कर लोंगो के सिरों के ऊपर से सड़क की ओर बेचैनी से देखते थे और कुत्तों से घिरे हुए भेड़ियों जैसे लगते थे। सभी यह जानते थे कि एक जैसी वर्दी पहने हुए हड़ताली इस दृढ़ निर्णय के सूत्र में कसकर बँधे हुए हैं कि किसी भी हालत में कदम पीछे नहीं हटायेंगे और भीड़ को इस बात से और भी अधिक गुस्सा आ रहा था। किन्तु भीड़ में कुछ दार्शनिक किस्म के लोग भी थे जो बड़े इत्मीनान से सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए हड़ताल के बहुत ही कट्टर विरोधियों के साथ इस प्रकार तर्क-वितर्क कर रहे थे:

"अजी महानुभाव! अगर बच्चों को सेवैयाँ तक खिलाने को पैसे काफी न हों तो क्या?"

नगरपालिका के बने-ठने पुलिस वाले दो-दो तीन-तीन की टोलियों में खड़े हुए इस बात की ओर ध्यान दे रहे थे कि लोंगो के भीड़ के कारण ट्रामों की गतिविधि में बाधा न पड़े। वे कड़ाई से तटस्थता का अनुकरण कर रहे थे, हड़तालियों तथा हड़ताल-विरोधियों को एक जैसी शान्त नजर से देखते थे। और जब चीख-चिल्लाहट तथा हाव-भाव बहुत ही उग्र रूप धारण कर लेते थे तो दोनों पक्षों का खुशमिजाजी से मजाक उड़ते थे। कोई गम्भीर भिड़न्त हो जाने की हालत में दखल देने को तैयार फौजी-पुलिस के दस्ते छोटी-छोटी और हल्की-हल्की बन्दूकें हाथ में लिए हुए पास की तंग-सी गली के घरों की दीवार के साथ सटे खड़े थे। तिकोने टोप, छोटे-छोटे लबादे और पतलूनों पर रक्त की दो धाराओं जैसी पट्टियों वाले पतलून पहने ये लोग ख़ासे मनहूस लग रहे थे।

आपसी तू-तू मैं-मैं, ताने-बोलियाँ, व्यंग्य और तर्क-वितर्क - आचानक यह सब कुछ बन्द हो गया, लोंगो में एक नयी, मानो शान्ति देने वाली भावना की लहर-सी दौड़ गयी, हड़तालियों के चेहरे पर अधिक गम्भीरता छा गयी, साथ ही वे एक-दूसरे के अधिक निकट हो गये और भीड़ चिल्ला उठीः

"फौजी आ गये!"

हड़तालियों को मजाक उड़ाती और खुशी भरी सीटियाँ सुनायी दीं, अभिवादन के नारे गूँज उठे और हल्के भूरे रंग का तथा पनामा टोपी पहने कोई मोटा-सा आदमी पत्थरों की सड़क पर पाँव बजाता हुआ उछलने-कूदने लगा। कण्डकटर और ट्राम-ड्राइवर भीड़ को चीरते हुए धीरे-धीरे ट्रामों की तरफ बढ़ने लगे, उनमें से कुछ एक तो पायदानों पर चढ़ भी गये - वे पहले से भी ज्यादा संजीदा हो गये थे और भीड़ की आवाजों का कठोरता से जवाब देते हुए उसे रास्ता देने को मजबूर कर रहे थे। खामोशी छा गयी।

तटवर्ती साण्टा लुचिया की ओर से भूरी वर्दियाँ पहने छोटे-छोटे फौजी नाच की तरह हल्के-फुल्के कदम बढ़ाते, पाँवों से लयबद्ध आवाज पैदा करते और बायें हाथों को एक ही ढंग से यन्त्रवत् हिलाते हुए चले आ रहे थे। वे मानो टीन के बने हुए और चाभी से चलनेवाले खिलौनों की तरह आसानी से टूट जाने वाले प्रतीत हो रहे थे। त्योंरियाँ चढ़ाये और होठों पर तिरस्कारपूर्वक बल डाले हुए ऊँचे कद का एक सुन्दर अफसर इनका नेतृत्व कर रहा था। ऊँचा टोप पहने, लगातार कुछ बोलता और हाथों के असंख्य संकेतों से हवा को चीरता हुआ एक मोटा-सा आदमी उसके साथ-साथ उछलता और दौड़ता चला आ रहा था।

भीड़ तेजी से ट्रामों से दूर हट गयी - भूरे रंग की माला से मनकों की तरह फौजी पायदानों के पास रुकते हुए, जहाँ हड़ताली खड़े थे, डिब्बों के निकट बिखर गये।

ऊँचा टोप पहने वाले को घेरे हुए कुछ अन्य धीर-गम्भीर लोग हाथों को जोर से हिलाते हुए चिल्ला रहे थेः

"आखिरी बार सुनते है?"

अफसर एक ओर को सिर झुकाये हुए ऊबभरे ढंग से अपनी मूँछों पर ताव दे रहा था। ऊँचे टोप को हिलाता और भगता हुआ वह व्यक्ति उसके पास आया और उसने खरी-खरी आवाज में चिल्लाकर कुछ कहा। अफसर ने तिरछी नजर से उसकी तरफ देखा, तनकर खड़ा हो गया, उसने छाती को अकड़ाया और ऊँची आवाज में आदेश देने लगा।

ऐसा होते ही फौजी उछलकर ट्रामों के पायदानों पर दो-दो की संख्या में चढ़ने लगे और इसी समय ट्राम-ड्राइवर और कण्डक्टर नीचे कूद गये।

भीड़ को यह दिलचस्प मजाक-सा प्रतीत हुआ - लोग चीखने-चिलाने, सीटियाँ बजाने और ठहाके लगाने लगे। किन्तु यह सब एकाएक शान्त हो गया और लोग गम्भीर तथा तनावपूर्ण चेहरे बनाये और हैरानी से आँखें फैलाये हुए भारी मन से ट्रामों के पीछे हटने लगे और सबसे आगे खड़ी ट्राम की ओर बढ़ चले।

सभी को यह साफ दिखायी देने लगा कि ट्राम के पहियों से दो कदम की दूरी पर पके बालोंवाला एक ड्राइवर, जिसका चेहरा फौजियों जैसा था, सिर से टोपी उतारकर लाइनों के आर-पार चित्त लेटा हुआ है और चुनौती देती-सी उसकी मूँछें आकाश को ताक रही हैं। बन्दर की तरह चुस्त-फुर्तीला, एक नाटा सा तरुण भी उसके पास लेट गया और उसके बाद अन्य लोग भी इत्मीनान से वहीं लेटते चले गये...

भीड़ में दबी-घुटी भनभनाहट थी, मदोन्ना का आह्वान करती हुई भयभीत-सी आवाजें गूँज उठती थीं, कुछ लोंग झल्लाकर भला-बुरा भी कहते, औरतें चीखती और आहें भरतीं और इस दृश्य से आश्चर्यचकित छोकरे रबर के गेंदों की तरह उछल रहे थे।

ऊँचा टोप पहने व्यक्ति सिसकती-सी आवाज में कुछ चिल्लाया, अफसर ने उसकी ओर देखकर कन्धे झटके - अफसर को ड्राइवरों की जगह पर अपने फौजी तैनात करने चाहिए थे, किन्तु उसके पास हड़तालियों के विरुद्ध संघर्ष करने का आदेश-पत्र नहीं था।

तब ऊँचे टोप वाला व्यक्ति जी-हुजूरी करने वाले कुछ आदमियों को साथ लिए हुए फौजी पुलिसियों की ओर लपका - वे अपनी जगहों से हिले, पटरियों पर लेटे हुए लोंगो के पास आये और उन्हें वहाँ से उठाने के इरादे से उन पर झुक गये।

कुछ हाथापाई औा झगड़ा हुआ, लेकिन अचानक धूल से लथपथ दर्शकों की सारी भीड़ हिली-डुली, चीखी-चिल्लायी और ट्राम की पटरियों की ओर भाग चली। पनामा टोपी पहने हुए व्यक्ति ने टोपी सर से उतारी, उसे हवा में उछाला, हड़ताली का कन्धा थपथपाकर तथा ऊँची आवाज में उसे प्रोत्साहन के कुछ शब्द कहकर सबसे पहले उसके निकट लेट गया।

उसके बाद खुशमिजाज और शोर मचाते हुए कुछ लोग, ऐसे लोग जो दो मिनट पहले तक वहाँ नहीं थे, ट्राम की पटरियों पर ऐसे गिरने लगे मानो उनकी टाँगें काट दी गयी हों। वे जमीन पर लेटते, हँसते हुए एक-दूसरे की ओर देखकर मुँह बनाते और चिल्लाकर अफसर से कुछ कहते जो ऊँचे टोपवाले व्यक्ति के सामने अपने दस्ताने फटकारता, व्यंग्यपूर्वक हँसता और सुन्दर सिर को झटकता हुआ कुछ कह रहा था।

अधिकाधिक लोग पटरियों पर लेटते जाते थे, औरतें अपनी टोकरियाँ और पोटलियाँ फेक रही थीं, हँसी से लोट-पोट होते हुए छोकरे ठिठुरे पिल्लों की तरह गुड़ी-मुड़ी हो रहे थे और अच्छे कपड़े पहने लोग भी दायें-बायें करवट लेते हुए धूल में लोट रहे थे।

पहली ट्राम से पाँच फौजियों ने बहुत-से लोगों को पहियों के नीचे लेटे देखा, हँसी के मारे उनका बुरा हाल हो रहा था, वे हैंडलों को थामकर डोलते हुए, सिरों को पीछे की ओर झटकते तथा आगे की तरफ झुकते हुए जोर के ठहाके लगा रहे थे। अब वे टीन के बने खिलौनों जैसे बिल्कुल नहीं लग रहे थे।

...आध घण्टे के बाद शोर मचाती, चीं-चूं की आवाज पैदा करती हुई ट्रामें सारे नेपल्ज में चल रही थीं, उनके पायदानों पर खुशी से मुस्कराते हुए विजेता खड़े थे और डिब्बों के साथ-साथ चलते हुए भी वही बड़ी शिष्टता से पूछ रहे थेः

"टिकट?!"

उनकी ओर लाल और पीले नोट बढ़ाते हुए लोग आँखें मिचमिचाते थे, मुस्कराते थे, खुशमिजाजी से बड़बड़ाते थे।

भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चलो!

जन्म शताब्दी वर्ष
(27 सितम्बर 2007 - 27सितम्बर 2008)

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए।"

- भगतसिंह, 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' से

"धार्मिक अन्धविश्वास और कटट्रपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में पीछा छुड़ा लेना चाहिए। जो चीज़ आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।"

- भगतसिंह, भगवती चरण वोहरा, 'नौजवान भारत सभा का घोषणापत्र' से

"...यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के सांधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक या सर्वथा भारतीय ही हों।...यदि कुछ भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

- फाँसी से तीन दिन पूर्व भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव द्वारा फाँसी के बजाय गोली से उड़ाये जाने की मॉग करते हुए पंजाब के गर्वनर को लिखे गये पत्र से

"नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्ट्री-कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।"

- भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त पंजाब छात्र संघ लाहौर के दूसरे अधिवेशन में जेल से भेजे गये पत्र से

"इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है!"

"अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज़्यादा लिया और दिया
बहुत-बहुत कम
मर गया देश, ओ
जीवित रह गये तुम..."

-गजानन माधव मुक्तिबोध
('अँधेरे में' कविता से)

मध्य वर्ग के नयनों में 'नैनो' का नूर, बजाज–मारुति वालों की जलन और टाटाजी की शान

रतन टाटा हर हाल में, हर क़ीमत पर अपनी लखटकिया कार 'नैनों' को सड़कों पर उतारने के लिये क्यों बेताब थे? अगर ख़ुद टाटाजी की ज़ुबानी सुनें तो वे दुपहिया चलाने वाले लोगों की परेशानियों से बहुत व्यथित थे। सड़कों पर दुपहिया गाड़ी पर जब पूरे परिवार (माँ-बाप और बच्चे) को सिकुड़े-सहमे, पग-पग पर मौत का ख़तरा उठाते देखते थे तो उन्हें रातों में नींद नहीं आती थी। अपने काम करने की मेज पर वह देश में सड़क दुर्घटनाओं से होने वाली मौतों के आँकड़े सजाकर रखते थे और उसे अपडेट करते रहते थे। राजधानी दिल्ली और अन्य महानगरों पर उनकी विशेष नज़र रहती थी। उन्हें मालूम था कि केवल राजधानी दिल्ली में हर वर्ष क़रीब अठारह सौ लोग सड़क दुर्घटनाओं में मरते हैं जिनमें एक तिहाई दुपहिया वाहनों पर सवार होते हैं। मरने वालों में मोटरगाड़ी पर सवार लोगों का प्रतिशत केवल पाँच होता है। टाटाजी की यही पीड़ा और आँकड़ों की प्रोसेसिंग 'नैनो' का रूप धरकर प्रगति मैदान में नुमाइश बनकर उतरी। मीडिया के कैमरों की चकाकौंध और मॉडलों की बाँकी अदाओं के बीच जब प्रगति मैदान के व्यापार मेले में 'नैनो' के पट खोलकर रतन टाटा शान से उतरे तो मध्य वर्ग की हसरतों को पंख लग गये और प्रतिद्वंद्वियों के होश फ़ाख्ता हो गये। बजाज-मारुति वाले तो इस कदर जल-भुन गये कि अभी तक धुआँ उठ रहा है।

ख़ुशी के मौक़ों पर बुरी यादों को कौन नहीं भुला देना चाहता। टाटाजी ने भी इस मौके पर यह कहकर बुरी यादों को भुलाना चाहा कि उनकी 'नैनो' के लिए ज़मीन का एक छोटा सा टुकड़ा पाने के लिए सिंगुर में जो ख़ून बहाना पड़ा वह सब उनके प्रतिद्वंद्वियों की जलन की वजह से हुआ। सिंगुर की जनता तो 'नैनो' चाहती थी। मौके पर राहुल गाँधी भी मुस्कराते हुए सोच रहे थे कि 'नैनो' तो सड़क पर आ गयी लेकिन अभी सिंगुर में उनका 'रोड शो' बाकी है। भावुकता में टाटाजी और जो भी कहते गये सबने फटी आँखों से देखा-सुना और इस 'भारत रत्न' के प्रति गौरव का भाव महसूसते हुए कैमरा दिखाऊ सधी हुई तालियाँ बजायीं।

अब भला टाटाजी से यह कौन पूछे कि 'नैनो' चलेगी तो पेट्रोल से ही न। इससे जो पेट्रोल की माँग बढ़ेगी और उसे पूरा करने के लिए भारी मात्रा में कच्चे तेल का आयात करना पड़ेगा तो क्या इससे विदेशी मुद्रा भण्डार पर दबाव नहीं बढ़ेगा। यह सोचना टाटाजी का काम तो है नहीं। उसके लिए तो चिदम्बरम, रामोजी नाइक आदि हैं ही। आयात करने के लिए तेल उत्पादक देशों में काम कर रहे भारतीय श्रमिक विदेशी मुद्रा भेजते ही रहेंगें। तेल के आयात बिल का भुगतान करने के लिए अन्य ज़रूरी चीजों, मसलन अनाज, फल, सब्जियाँ, दूध के पदार्थ आदि का आयात अगर कम करना पड़ेगा तो वे कर लेंगे। पेट्रोल की क़ीमतें थोड़ी और बढ़ जायेंगीं, क्या फर्क पड़ेगा? 'नैनो' पर सवारी करने का लुत्फ उठाने के लिए मध्य वर्ग खाने-कपड़े में थोड़ी कटौती कर लेगा।

किसी ने टाटाजी के दुर्घटना सम्बन्धी आँकड़ों की प्रोसेसिंग के सही-गलत होने पर भी सवाल नहीं खड़ा किया। 'कार वाला' बनने की हसरत पूरी करने के लिए एडवांस बुकिंग में पस्त-मस्त मध्य वर्ग को अभी यह सोचने की फ़ुरत कहाँ है कि सड़कों पर लोड बढने से उनकी लखटकिया कैसे फर्राटा भर पायेगी! जब जाम लगेगा या किसी साइकिल-रिक्शे या मोटरसाइकिल वाले से उनकी जान से व्यारी नैनो को खरोंच लग जायेगी तो वह आग-बबूला होने और 'दो कौड़ी के लोगों' पर बरसते हुए अधिक से यही तो कह पायेगा कि 'अन्धे हो क्या! देख कर नहीं चलते।' अगर थोड़ा और गुरूर दिखायेगा तो डायलाग मारेगा, "बैलगाड़ी की रफ्तार से चलने के लिए लखटकिया नहीं खरीदी है।" ज्यादा गुस्सा दिखायेगा तो भुगतना भी पड़ सकता है क्योंकि सड़क पर अगर किसी दूसरे लखटकिया वाले से टक्कर हो गयी जो जान भी गँवानी पड़ सकती है। कुतुबमीनार के पास पिछले दिनों ऐसा ही हुआ था जब दो कार वाले भिड़ गये और एक की जान फोकट की शान चली गयी थी।

पिछले वर्ष पूरे देश में पन्द्रह लाख मोटर गाड़ियाँ सड़क पर उतरी थीं। दिल्ली में पिछले वर्ष रोज़ साढ़े छह सौ नई गाड़ियाँ सड़कों पर आयीं। दिल्ली शहर की कुल लगभग एक करोड़ पैंसठ लाख की आबादी में चौवन लाख गाड़ियाँ हैं। अनुमान है कि अगले बीस वर्षों में गाड़ियों की कुल संख्या बढ़कर आज से पाँच गुनी हो जायेगी। ये सब सड़कों पर धक्का मुक्की करते नज़र आयेंगी। इससे दुर्घटनाएँ बढ़ेगी या कम होंगी। लेकिन टाटाजी को इससे क्या। आँकड़ो का हिसाब-किताब लगाते समय उनका ध्यान तो कहीं और टिका था।

लखटकिया कार से जितना धुआँ आसमान में उड़ेगा क्या उसके खिलाफ भी सुप्रीम कोर्ट फ़रमान जारी करेगा, जिस तरह उसने दिल्ली से प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को शहर से हटा कर लाखों मज़दूरों की रोज़ी-रोटी छीन ली थी। जाहिर है, सुप्रीम कोर्ट की मुख्य चिन्ता उस समय पर्यावरण को नहीं इजारेदारी को बचाने की थी। उसके इंसाफ़ का डण्डा भला टाटाजी को घाटा क्यों होने देगा?

अब सड़क पर चलने वाले साइकिल वालों, ठेले वालों और पैदल वालों का क्या होगा? जब कल तक पैदल चलने वाले, दुपहिया पर चलने वाले मध्यवर्ग को सोचने की फ़ुर्सत नहीं तो फिर टाटाजी क्यों सोचें? सरकारों में बैठे उनके खिदमदगार क्यों सोचें? अदालतें क्यों सोचें। एक बी एम डब्ल्यू वाले को सज़ा देने में सुप्रीम कोर्ट हाँफ रहा है तो फिर अब पैदल वालों का क्या होगा?

पैदल वालों, साइकिल-ठेले वालों को ख़ुद ही अपने बारे में सोचना होगा। जब आपके बारे में सोचने वाला कोई नहीं तब आप करेगें भी क्या ? टाटाजी को अपने मुनाफ़े का हिसाब-किताब लगाने दीजिए। आप अपने बारे में सोचिए। लखटकिया कार मालिक बनने वालो! क्या अब तुम पैदल वालों को एकदम भूल जाओगे।

- आनन्द देव

परिवर्तन के रास्ते के बारे में...

(पेज 10 से आगे)

वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन करके, पूँजी की सत्ता को निर्णायक शिकस्त देने की रणनीति एवं आम रणकौशल विकसित करेंगी। यह प्रक्रिया गहन सामाजिक प्रयोग, उनके सैद्धान्तिक समाहार, गम्भीर शोध-अध्ययन, वाद-विवाद, विचार-विमर्श और फिर नई सर्वहारा क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप एवं रास्ते से सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनसमुदाय को परिचित कराने की प्रक्रिया होगी। इन्हीं कार्यभारों को हम नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मार्क्सवादी दर्शन को सर्वतोमुखी नयी समृद्धि तो भावी नयी समाजवादी क्रान्तियाँ ही प्रदान करेंगी, लेकिन यह प्रक्रिया नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को अंजाम देने के साथ ही शुरू हो जायेगी। नये सर्वहारा पुनर्जागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार विश्व-ऐतिहासिक विपर्यय के वर्तमान दौर में, तथा विश्व पूँजीवाद की प्रकृति एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन करके श्रम और पूँजी के बीच के विश्व-ऐतिहासिक महासमर के अगले चक्र में पूँजी की शक्तियों की अन्तिम रूप से पराजय को सुनिश्चित बनाने की सर्वतोमुखी तैयारियों के कठिन चुनौतीपूर्ण दौर में, सर्वहारा वर्ग के अनिवार्य कार्यभार हैं जिन्हें सर्वहारा वर्ग का हिरावल दस्ता अपनी सचेतन कार्रवाइयों के द्वारा नेतृत्व प्रदान करेगा। ये कार्यभार पार्टी-निर्माण के कार्यभारों के साथ अविभाज्यतः जुड़े हुए हैं और पाटी-निर्माण के प्रारम्भिक चरण से ही इन्हें हाथ में लेना ही होगा, चाहे हमारे ऊपर अन्य आवश्यक राजनीतिक-सांगठनिक कामों का बोझ कितना भी अधिक क्यों न हो! इन कार्यभारों को पूरा करने वाला नेतृत्व ही नयी समाजवादी क्रान्ति की लाइन को आगे बढ़ाने के लिए सैद्धान्तिक अध्ययन और ठोस सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों के अध्ययन के कामों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा पायेगा।

नयी समाजवादी क्रान्ति के तूफ़ान को निमंत्रण दो!
सर्वहारा के हिरावलों से अपेक्षा है स्वतंत्र वैज्ञानिक विवेक की और धारा के विरुद्ध तैरने के साहस की!

इतिहास में पहले भी कई बार ऐसा देखा गया है कि राजनीतिक पटल पर शासक वर्गों के आपसी संघर्ष ही सक्रिय और मुखर दिखते हैं तथा शासक वर्गों और शासित वर्गों के बीच के अन्तरविरोध नेपथ्य के नीम अँधेरे में धकेल दिये जाते हैं। ऐसा तब होता है जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है, ऐतिहासिक प्रगति की शक्तियों पर गतिरोध और विपर्यय की शक्तियाँ हावी होती हैं। हमारा समय विपर्यय और प्रतिक्रिया का ऐसा ही अँधेरा समय है। और यह अँधेरा पहले के ऐसे ही कालखण्डों की तुलना में बहुत अधिक गहरा है, क्योंकि यह श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के दो चक्रों के बीच का ऐसा अन्तराल है, जब पहला चक्र श्रम की शक्तियों के पराजय के साथ समाप्त हुआ है और दूसरा चक्र अभी शुरू नहीं हो सका है।

इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भावी क्रान्तियों को रोकने के लिए विश्व-पूँजीवाद आज अपनी समस्त आत्मिक-भौतिक शक्ति का व्यापकतम, सूक्ष्मतम और कुशलतम इस्तेमाल कर रहा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि विश्व ऐतिहासिक महासमर के निर्णायक चक्र के पहले, प्रतिक्रिया और विपर्यय का अँधेरा इतना गहरा है और गतिरोध का यह कालखण्ड भी पहले के ऐसे ही कालखण्डों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पूरी दुनिया में नई सर्वहारा क्रान्तियों की हिरावल शक्तियाँ अभी भी ठहराव और बिखराव की शिकार हैं। यह सबकुछ इसलिए है कि हम युग-परिवर्तन के अबतक के सबसे प्रचण्ड झंझावाती समय की पूर्वबेला में जी रहे हैं।

यह एक ऐसा समय है जब इतिहास का एजेण्डा तय करने की ताक़त शासक वर्गों के हाथों में है। कल इतिहास का एजेण्डा तय करने की कमान सर्वहारा वर्ग के हाथों में होगी। यह एक ऐसा समय है जब शताब्दियों के समय में चन्द दिनों के काम पूरे होते हैं, यानी इतिहास की गति इतनी मद्धम होती है कि गतिहीनता का आभास होता है। लेकिन इसके बाद एक ऐसा समय आना ही है जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में अंजाम दिये जायेंगे।

लेकिन गतिरोध के इस दौर की सच्चाइयों को समझने का यह मतलब नहीं कि हम इतमीनान और आराम के साथ काम करें। हमें अनवरत उद्विग्न आत्मा के साथ काम करना होगा, जान लड़ाकर काम करना होगा। केवल वस्तुगत परिस्थितियों से प्रभावित होना इंकलाबियों की फितरत नहीं। वे मनोगत उपादानों से वस्तुगत सीमाओं को सिकोड़ने-तोड़ने के उद्यम को कभी नहीं छोड़ते। अपनी कम ताकत को हमेशा कम करके ही नहीं आँका जाना चाहिए। अतीत की क्रान्तियाँ बताती हैं कि एक बार यदि सही राजनीतिक लाइन के निष्कर्ष तक पहुँच जाया जाये और सही सांगठनिक लाइन के आधार पर सांगठनिक काम करके उस राजनीतिक लाइन को अमल में लाने वाली क्रान्तिकारी कतारों की शक्ति को लाभबंद कर दिया जाये तो बहुत कम समय में हालात को उलट-पुलटकर विस्मयकारी परिणाम हासिल किये जा सकते हैं। हमें धारा के एकदम विरुद्ध तैरना है। इसलिए, हमें विचारधारा पर अडिग रहना होगा, नये प्रयोगों के वैज्ञानिक साहस में रत्ती भर कमी नहीं आने देनी होगी, जी-जान से जुटकर पार्टी-निर्माण के काम को अंजाम देना होगा और वर्षों के काम को चन्द दिनों में पूरा करने का जज़्बा, हर हाल में कठिन से कठिन स्थितियों में भी बनाये रखना होगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ, सुखविन्दर ● सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 ● सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ